लोक साहित्य माला

दूसरी पुस्तक

लेखक

आचार्य नानाभाई

सस्ता साहित्य मण्डल
सर्वोदय साहित्य माला : अठहत्तरवाँ ग्रंथ

लोक साहित्य माला : दूसरी पुस्तक

[७८ : २]

प्रकाशक—
मार्तण्ड उपाध्याय,
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली

पहली बार : २०००
जून सन् १९३८
मूल्य
आठ आना

मुद्रक—
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस,
नई दिल्ली

परिचय

प्रसिद्ध है कि जो भारत (महाभारत) में नहीं वह भारत भर (भारतवर्ष) में नहीं है। महाभारत हमारे साहित्य-मंदिर का कलश है। यह बृहद् ग्रन्थ इतिहास है, काव्य है, धर्मग्रन्थ है, बल्कि पाँचवाँ वेद है। आर्यावर्त के उत्थान और पतन दोनों ही प्रकरणों का इस महान् ग्रन्थ में बड़ी खूबी के साथ दिग्दर्शन हुआ है। भारत की धर्मगर्भा तेजस्विनी संस्कृति आज लोप हो जाती, यदि भगवान् कृष्ण द्वैपायन महाभारत के अन्दर उसकी अमर प्रतिष्ठा न कर गये होते। इस 'जय' (महाभारत) की एक-एक पंक्ति में अधर्म और असुन्दर पर किस प्रकार विजय प्राप्त की जासकती है इसका सनातन संदेश मानव-कुल को दिया गया है। जिस ग्रन्थ का एक भाग भगवद्गीता हो उसकी महत्ता के विषय में कुछ लिखना व्यर्थ-सा मालूम देता है।

महाभारत महान् है---इतना महान् कि उसका समुचित अध्ययन करना कठिन-सा है। विदेशी भाषाओं में भी महाभारत के कई संस्करण प्रकाशित हुए हैं, भारतीय भाषाओं में तो, बल्कि कहना चाहिए कि उतना अच्छा प्रयास अबतक नहीं हुआ है। खासकर इस ग्रंथ की मीमांसा या विवेचना, एकाध निबंध को छोड़कर कुछ बहुत गंभीरता से नहीं हुई है। प्राचीन टीकाएँ आधुनिक युग के अनुकूल नहीं बैठतीं। वैज्ञानिक विश्लेषण के बग़ैर हमें आज कोई भी पुरानी चीज़ पूरा-पूरा संतोष नहीं देती। राम और कृष्ण की अमर कथाओं को भी हम आज केवल कथा के रूप में नहीं देखना चाहते। यद्यपि मैं इस बात का विरोधी हूँ कि प्राचीन-से-प्राचीन कथाओं का मेल माध्यमिक काल या आधुनिक काल की आवश्यकताओं के साथ जैसे-तैसे बिठाया जाय, जैसे तुलसीदास को हिन्दू-संगठन का लोकनेता कहा जाय या गीता के श्लोकों

में से आतंकवाद का समर्थन खोजने की चेष्टा की जाय। फिर भी इतना मैं मानता हूँ कि एक युग की कड़ियाँ दूसरे युग की कड़ियों से जुड़ी हुई होती हैं। और हम जिस युग में पैदा हुए हैं उसमें भी हम रामायण और महाभारत से मुक्ति-संदेश प्राप्त कर सकते हैं। लोकमान्य तिलक ने गीता से आतंकवादियों को संतोष देने के लिए कोई ऐसा मसाला नहीं ढूंढ निकाला है कि जिसके कारण उनकी आँखें गीता पर गड़ जायें। लेकिन अपनी अपूर्व प्रतिभा के बल पर गीता को कोरे पाठ-पूजन के दायरे से बाहर निकालकर आधुनिक और भावी युग को सन्तोष दिलानेवाली एक अनुपम पुस्तक के रूप में जरूर हमारे सामने रख दिया है।

महाभारत का भीम कलेवर देखकर ही लोग प्रायः घबरा जाते हैं। किसी-किसी को उसमें असंगति दोष भी नजर आता है। जरूरत इस बात की है कि महाभारत को ऐसे रूप में जनसाधारण के सामने रखा जाय कि आधुनिक युग उसमें अनुकूलता देख सके और संतोष तथा मार्ग-दर्शन भी उससे प्राप्त हो सके। महाभारत के एक-एक पात्र पर हृदयाकर्षक विवेचन किया जाय। वर्णन करने का ढंग अपना हो, पर रंग वही बना रहे। बच्चों के लिए वह कहानी का मजा दें, युवकों को क्रान्ति का दर्शन कराये, वृद्धों की विवेचना-शक्ति को आहार दे, तो समझना चाहिए कि वाङ्मय के मंदिर में हमनें महाभारत का यथेष्ट आदर किया और मानवजाति को आर्यावर्त की संस्कृति का यथेष्ट दान भी दिया।

संतोष की बात है कि इस प्रकार के प्रयत्न का श्रीगणेश हो चुका है। भावनगर (काठियावाड़) की सुप्रसिद्ध शिक्षण-संस्था दक्षिणामूर्त्ति विद्यामन्दिर के आचार्य श्री नृसिंहप्रसाद कालिप्रसाद भट्ट नें महाभारत के सुविख्यात तेरह पात्रों पर बड़े आकर्षक ढंग से ग्यारह पुस्तकें लिखी हैं, और वे दक्षिणामूर्ति प्रकाशन-मंदिर से प्रकाशित हुई हैं। शैली में

निश्चय ही चमत्कार है। यत्र-तत्र हमारे राष्ट्रनिर्माण के कार्य में सहारा देनेवाले अनेक सुन्दर और तेजस्वी वाक्य इन पुस्तकों में आये हैं। धर्म और अधर्म का, कर्तव्य और अकर्तव्य का, हिंसा और अहिंसा का, नीति और अनीति का इस खूबी और सादगी से विवेचन किया गया है कि मुंह से हठात् साधुवाद निकल आता है।

'सस्ता साहित्य-मण्डल' की सूक्ष्म दृष्टि 'दक्षिणामूर्ति' के इस साहित्य पर पड़ी और यह बड़े संतोप की बात है कि 'मण्डल' ने महाभारत के तीन पात्रों की कहानियां हिन्दी-पाठकों के लिए भी प्रस्तुत करदी हैं। अनुवाद अच्छा हुआ है और उसमें मूल के प्रवाह और शैली की रक्षा का पूरा प्रयत्न किया गया है लेकिन ऐसा करते हुए शायद असावधानी से कहीं-कहीं पर ठेठ गुजरातीपन आगया है। फिर भी कानों को यह दोप खटकेगा नहीं।

कर्ण, पांचाली और दुर्योधन इन तीन पात्रों की कथाओं का प्रस्तुत पुस्तक में संकलन है। रामायण के संबन्ध में जब हम कुछ सोचते या पढ़ते हैं तब प्रायः राम और सीता ये दो ही पात्र हमारे सामने आते हैं और आने ही चाहिएं। किन्तु रावण को तो हम दुरात्मा के ही रूप में देखने के आदी हो गये हैं। इसी तरह दुर्योधन का भी एक दुष्ट और अधम राजा के रूप में ही हमें दर्शन होता है। यद्यपि रावण भी महात्मा था और दुर्योधन भी एक महावीर और धर्माचारी भी था। समीक्षा की दृष्टि से हम देखें तो महाभारत को पूर्ण बनाने के लिए जितनी आवश्यकता युधिष्ठर, अर्जुन और कृष्ण की है उतनी ही आवश्यकता दुर्योधन, कर्ण और द्रोण की भी है। दुर्योधन का विश्वास ईश्वर की सत्ता और ईश्वर की इच्छा पर, युधिष्ठिर और अर्जुन की अपेक्षा, कुछ अधिक ही था। रणभूमि में पड़ा हुआ आहत दुर्योधन कहता है:—

"दूसरों को धोखा दिये बग़ैर जैसा मैं था वैसा ही दिखाने का जीवन भर मैंने प्रयत्न किया है, और इसीसे मुझे शान्ति है। पांडवों ने धर्म का ढोंग करके लोगों में प्रतिष्ठा प्राप्त की और आज कौरवों का साम्राज्य भी प्राप्त करेंगे। लेकिन गुरु-पुत्र, मनुष्य-मात्र के हृदय में परमेश्वर ने धर्म और अधर्म को नापने का जो विचित्र यंत्र रक्खा है उस यंत्र की बताई हुई बात कभी झूठी नहीं होती। संसार में अगर ईश्वर जैसी कोई वस्तु होगी, तो याद रखना अश्वत्थामा, मैं तो आज क्षत्रियों के बिस्तर पर सोकर स्वर्ग में जाता हूं, लेकिन यह सनातन ब्रह्मचारिणी पृथ्वी के पति पांडव भी अन्त में मेरी ही दशा को प्राप्त होंगे।"

यह किसी दुरात्मा के नहीं किसी महात्मा के ही उद्गार हो सकते हैं। और व्यास जैसे धर्म-व्याख्याता की लेखनी से ही इस प्रकार शत्रु के प्रति भी पूर्ण अहिंसक की दृष्टि रखकर आदर-भाव प्रगट किया जा सकता है।

यह छोटी-सी पुस्तक हिन्दी-संसार का समुचित प्रेम और आदर पायेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

हरिजन कालोनी, किंग्सवे
दिल्ली।

वियोगी हरि

पात्र-परिचय

सूतपुत्र कर्ण

: १ :

राधेय

अधिरथ धृतराष्ट्र का रथ हाँकनेवाला था। उसकी स्त्री का नाम राधा था।

उस ज़माने में रथ हाँकने का पेशा करनेवाले सूत जाति के लोग होते थे। लेकिन युद्ध के समय रथ हाँकने का काम इतनी ज़िम्मेदारी का समझा जाता था कि कई बार बड़े-बड़े समर्थ पुरुष इस काम में गौरव मानकर इसे अपनाते थे। श्रीकृष्ण स्वयं अर्जुन के सारथि हुए और मद्र देश के राजा शल्य ने सूतपुत्र कर्ण का रथ हाँका था; ये इस बात के सुप्रसिद्ध उदाहरण हैं।

राधा के कोई सन्तान नहीं थी। सारी ज़िन्दगी भर उसने न जाने कितने व्रत किये, तीर्थयात्रायें कीं, मिन्नतें मानीं, उपचार किये लेकिन ईश्वर ने राधा की गोद नहीं भरी। बिना संतान के राधा का जीवन सूना सा बन गया। किसी बालक को गोद लेकर भी राधा अपना मन समझा सकती थी लेकिन किसीका बालक इतना फालतू हो तब न!

एक रोज़ शाम को अधिरथ बाहर से घर आया। राधा अंदर भोजन बना रही थी।

"राधा, राधा; यह देख मैं तेरे लिए एक खिलौना लाया हूँ।" अधिरथ ने पुकारा।

"जब खिलौने से खेलनेवाला ही कोई नहीं है तो ऐसे खिलौनों से क्या लाभ ?" राधा रसोई घर के अंदर से एक लंबी सांस लेकर बोली।

"पर तू देख तो सही। यह खिलौना तो बहुत ही सुन्दर है।"

"इससे भी सुन्दर-सुन्दर खिलौने तुम लाये हो लेकिन ये खिलौने तो मेरे दिल को जलाते हैं। तुम पुरुष लोग यह महसूस नहीं कर सकते। अंतर का स्नेह पान कराने के लिए कोई बालक न हो तो स्त्री का हृदय कैसा सूख जाता है, इसका अनुभव तो अगले जन्म में जब स्त्री होओगे तब तुमको होगा।"

"पर जीजी," राधा की बहन बोली—"यह तो सचमुच बड़ा सुन्दर है तुम्हें बहुत अच्छा लगेगा।"

"ऐसे निर्जीव मिट्टी के पुतलों को जीवित मानकर अपना दिल बहलाने जैसी बालक अब मैं नहीं रही। अधिरथ, मुझसे मज़ाक न किया करो और मैं कहे देती हूँ कि अब आगे से ऐसे निर्जीव पुतले मेरे लिए मत लाया करो।" राधा उदास होकर बोली। उसका गला भर गया।

"पर बहन इस पुतले के अंदर तो जीव है।"

"एं जीव है ? सच कहती हो—?" कहकर रसोई घर में से राधा दौड़ती हुई बाहर निकली। अधिरथ के हाथ में बालक देखकर राधा तो दिङ्मूढ़ बन गई।

"अधिरथ, मैं यह क्या देख रही हूँ ?"

"तुम्हीं बताओ कि तुम क्या देख रही हो।"

"तुम्हें यह कहाँसे मिला ?"

"तुम्हीं बताओ ?"

"तुम्हारे हाथ में तो बालक है ! भगवान् ने सचमुच मेरे लिए यह खिलौना भेजा है ? अधिरथ, यह स्वप्न तो नहीं है ? मेरी आँखें मुझे धोखा तो नहीं दे रही हैं ? देखो मुझे धोखा मत देना।"

"नहीं नहीं। मेरे हाथ में यह बालक है और इसे मैं तुम्हारे ही लिए लाया हूँ। यह लो।"

राधा तो पागल जैसी हो गई। उसने जल्दी से बालक अपने हाथ में ले लिया। उसे अपनी छाती से चिपका लिया। उसका सिर सूंघा, उसकी आँखों पर धीरे से चुम्मा लिया और उसके सारे शरीर पर अपना कोमल हाथ फेरा।

"बेटा, तूने मेरे घर में उजाला कर दिया। इस अंधेरे कमरे में दीया जला दिया है। बहन जाओ आज सारे मुहल्ले में शकर बांटो।"

"लेकिन अधिरथ यह तो बताओ कि तुम्हें यह मिला कहाँ से ?" राधा की बहन ने उत्सुकता से पूछा।

"हाँ, हाँ, बेटा तू कहाँ से आया ? बतावेगा ?" राधा ने लाड़ से बालक की ओर देखकर प्रश्न किया !

अधिरथ बोला—"मैं अभी शाम को नदी के किनारे घूम रहा था कि नदी के प्रवाह में मैंने कुछ तैरता हुआ देखा।"

"एं—क्या कहा ? इसे किसीने बहा दिया था ?"

"नहीं, पहले मेरी बात तो सुन ! पहले तो मुझे ऐसा लगा कि शायद कोई मुरदा होगा या कोई लकड़ी होगी। लेकिन जब मैं पास गया तो देखा कि एक पेटी बही जा रही है।"

"फिर !"

"नदी के प्रवाह के साथ पेटी धीरे-धीरे बह रही थी। मैंने सोचा कि देखूँ इस पेटी के अन्दर क्या है ?" लेकिन पेटी दूर थी। उसके पास जाने लगा तो पानी ज्यादा गहरा होने लगा।"

"तो फिर क्या तुम अन्दर कूद पड़े ?"

"नहीं मैं किसी रस्सी या लम्बे बाँस की खोज में इधर उधर देखने लगा। पर कहीं कुछ दिखाई न दिया।"

"तो इतने में तो पेटी कहाँ की कहाँ निकल गई होगी।"

"तब मैं निराश होकर सूर्य भगवान् की तरफ़ देखने लगा। इतनेमें तो पेटी किनारे आ लगी और मेरे पैर से टकराई।"

"ओह तो ऐसा कहो न कि सूर्य भगवान् ने ही इसे मेरे लिए भेजा है। नहीं तो तुम क्या ला सकनेवाले थे। लेकिन पेटी में पानी न भर गया होगा ?"

"नहीं पेटी की दरारों में मोम भरा हुआ था। इससे अन्दर पानी की एक बूँद भी नहीं जा सकी।"

"इसे पेटी में रख कर बहा देनेवाली जनेता (माता) को भी तो हृदय होगा न !"

"पेटी के ऊपर कुंकुम के छींटे लगे हुए थे और वह चारों ओर मज़बूत रस्सी बँधी हुई थी।"

"तो मालूम होता है बड़ी सावधानी से सब काम किया गया था।"

"ज्यों ही मैंने पेटी खोली तो देखा कि उसमें एक बालक अंगूठा चूसते हुए पड़ा था।"

"तो उसमें यही था ?"

"हाँ, यही।"

"बेटा, तेरे इन सुनहले बालों पर मैं कितनी बार बार जाऊँ ?"

"राधा, इससे भी ज्यादा आश्चर्य की बात तो यह है इसके शरीर पर जो कवच है वह जन्म से ही इसकी चमड़ी के साथ जुड़ा हुआ है।"

"कान इसके कितने सुन्दर हैं। और दोनों कान में इसके ये कुण्डल किसने पहनाये होंगे ?"

"ये कुण्डल भी जन्म से ही आये मालूम होते हैं। देख तो कान से ये अलग ही नहीं होते।"

"अधिरथ, जन्म से कवच और कुण्डल लेकर पैदा होनेवाले किसी मानवी को आपने देखा है ?"

"मानवी सृष्टि में तो यह बात असम्भव है। इसी कारण मुझे तो यह बालक देवपुत्र मालूम होता है। हम बड़े भाग्यशाली हैं जो यह हमें मिला।"

"बेटा, देवों के भवनों को छोड़कर क्या तू मेरे लिए यहाँ आया है ? हे देवता गण! आप अपने इस बालक की रक्षा करना।"

"बहन, तो चलो हम इसका नाम रखें।"

"तो तू ही नाम रख। तू तो इसकी मौसी है न?"

"बोलो, अधिरथ क्या नाम रखें?"

"जो तुमको अच्छा लगे।"

"मुझे तो इसके ये सोने के कुण्डल अच्छे लगते हैं, इस कारण इसका नाम 'वसुषेण' रखना चाहती हूँ।"

"अच्छा तो इसका नाम वसुषेण ही रहा।"

"आ बेटा! आज तक लोग मुझे केवल राधा ही कहते थे। अब तो वसुषेण की माँ कहकर पुकारेंगे। बेटा तूने मुझे माँ बना दिया।" राधा की आँखों से आँसू की एक बूँद टपक पड़ी।

यह राधेय ही हमारी कथा का कर्ण। बड़ा होने पर राधेय ने इन्द्र को अपने कवच और कुंडल दान कर दिये थे, इसकारण वह कर्ण कहलाया। इतिहास इसे कर्ण के नाम से पहचानता है।

: २ :

'अंगराज'

"विदुर!" प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्र बोले।

"जी, महाराज।"

"अब तुम जल्दी करो। मेरे पुत्रों और पाण्डवों ने अपना अभ्यास समाप्त कर लिया है इसलिए उनकी परीक्षा देखने की मेरी बड़ी इच्छा है।"

"लेकिन आप यों भी देख कहां सकते हैं?"

"यह तो ठीक है लेकिन तुम देखोगे, हमारे पितामह देखेंगे, कृपाचार्य देखेंगे, हमारी सारी प्रजा देखेगी, तो यह सब मेरे देखे बराबर ही है। तुम भीष्म पितामह के साथ रहकर इस परीक्षा के लिए जगह वगैरा तैयार कराओ। देखना ज़मीन बिलकुल सपाट, बना झाड़-झंखर की और देखनेवालों को मनोहर लगे ऐसी होनी चाहिए।" धृतराष्ट्र बोले।

"फिर उस भूमि का खात-मुहुर्त कौन करेंगे?"

"हमारे पितामह। भीष्म स्वतः हल से उस ज़मीन की सीमा बांधेंगे। और उस सीमा में आप रंगभूमि बनायेंगे।"

"ठीक, मैं समझ गया।"

"यह भी ख़याल में रखना कि कुमारों की शस्त्रास्त्र विद्या के

प्रदर्शन के लिए काफ़ी ज़मीन खुली और चौड़ी रहे। और बाक़ी प्रेक्षकों के लिए भी थोड़ा भाग अलग रखना।"

"हाँ यह मेरे ख़याल में है।"

"नहीं, केवल यही नहीं। प्रेक्षकों में मैं, तुम, भीष्म पितामह, कृपाचार्य आदि सब पुरुष वर्ग होंगे। स्त्री वर्ग के लिए अलग मचान बनाना। कुन्ती, गांधारी वगैरा सब स्त्रियाँ भी आयेंगी। इसके अलावा नगर के चातुर्वर्ण्य के लिए भी अच्छी व्यवस्था करना। भविष्य में जिस प्रजा पर ये बालक राज्य करेंगे उनकी शिक्षा-दीक्षा आदि वह अच्छी तरह आज देखले यह मैं चाहता हूँ।"

"अच्छी बात। यह सारी व्यवस्था मैं कर लूँगा।"

"इसके अलावा गाँव के श्रीमन्त लोग अपने-अपने ख़ीमे अलग लगाने की माँग करेंगे सो उनके लिए भी ज़मीन की व्यवस्था पहले से ही कर रखना जिससे बाद में अड़चन न पड़े।"

"अच्छी बात है।"

"जो मुझे सूझा वह मैंने तुमको बतला दिया। बाक़ी तुम अपनी बुद्धि से विचार करके ठीक कर लेना। और कुरुकुल के पुत्रों को शोभा देने योग्य इस जलसे की व्यवस्था करना।"

× × × ×

परीक्षा का दिन आया। हस्तिनापुर के पास ही के मैदान में रंगभूमि तैयार हो गई। तोरण और पताकायें हवा में लहरा रही हैं। अन्दर और बाहर सब तरफ़ के रास्तों पर पानी का छिड़काव हो रहा है। दर्शकों की रंगभूमि, श्रीमन्तों के ख़ीमे, और शिष्टजनों

के आसन, स्त्रियों के मंच आदि सब धीरे-धीरे खचा-खच भरे जा रहे हैं। और लोग आतुरता से कुमारों की राह देख रहे हैं। भीष्म आगये हैं, कृपाचार्य आगये हैं, धृतराष्ट्र और विदुर भी आगये हैं, कुन्ती और गांधारी भी और स्त्रियों को लेकर अपने मंचपर आ बैठी हैं। नगर के सब वर्ण रंग-बिरंगे वस्त्र धारण कर आगये हैं।

इतने में दरवाज़े में से द्रोणाचार्य ने प्रवेश किया। हवा में लहराती हुई उनकी सफ़ेद दाढ़ी और उतनी ही श्वेत उनकी मूँछें और सिर के बाल, घुटनों तक पहुँचनेवाले लम्बे-लम्बे हाथ, धीर और वीर चाल, मज़बूत स्नायु, साथ में अश्वत्थामा और पीछे-पीछे उछलते खूनवाले युवक कुमार। इन सबको आते देखकर सारा मण्डप तालियों की गड़-गड़ाहट से गूँज उठा। द्रोण ने आकर सारी सभा का वन्दन किया और बोले:—

"पितामह, महाराज धृतराष्ट्र और दर्शक गण! इतने दिनों में मैंने इन राजकुमारों को जो शिक्षा दी है इसे ये सब आपके सामने बतावेंगे। इन कुमारों के क्षात्र तेज को ज्यादा-से-ज्यादा चमकाने का मैंने प्रयत्न किया है। आप सब आज मेरे प्रयत्न की परीक्षा करें यही मेरी प्रार्थना है। मेरा विश्वास है कि मेरे ये शिष्य मुझे यश देंगे।"

इसके बाद कुमार अपनी-अपनी विद्यायें रंगभूमि पर दिखाने लगे। तलवार और भाले के खेल से लगाकर बड़े-बड़े अस्त्रों के साधने के खेलों तक सब विद्यायें सबों ने बताई। युधिष्ठर,

दुर्योधन, भीम, दुःशासन, विकर्ण सहदेव, सबने क्रम-क्रम से शस्त्रास्त्रों के प्रयोग किये और प्रेक्षकों के मन को हर लिया। इतनी सामान्य परीक्षा हो जाने के बाद भीम और दुर्योधन आगे आये। दोनों जवान थे। दोनों शरीर से मज़बूत थे। दोनों लंगोट कसे हुए थे। दोनों के हाथों पर चमड़े के पट्टे बंधे हुए थे। दोनों के हाथ में एक-एक गदा घूम रही थी। धीरज और चतुराई से दोनों अपने-अपने पैंतरे बदल रहे थे। शेर के समान एक-दूसरे पर वार करने का लाग देखते थे और पर्वत जैसी ढाल पर दोनों एक दूसरे का वार झेल रहे थे। दर्शक थोड़ी देर के लिए स्थिर होगये। दोनों की तारीफ़ करने लगे। धीरे-धीरे आपस में दल बनने लग गये। इतने में द्रोणाचार्य न इशारा किया और गदा-युद्ध समाप्त हुआ।

दुर्योधन और भीम के जाने के बाद अर्जुन आया। अर्जुन तो द्रोणाचार्य का सबसे प्रिय शिष्य। अर्जुन की मेधा, उसकी तीव्र बुद्धि उसकी चालाकी, उसका उद्योग, उसकी निष्ठा इन सबने द्रोणाचार्य को मुग्ध कर लिया था। और द्रोणाचार्य ने अपनी सारी विद्या को अर्जुन में उंडेलने का पूरा प्रयत्न किया था। कुन्ती का पुत्र अर्जुन जब सामने आया तो ऐसी तालियाँ बजीं कि कुछ पूछो मत। गांधारी कुन्ती से पूछने लगी, धृतराष्ट्र विदुर से पूछने लगे और दर्शक थोड़ी देर के लिए खड़े हो होकर अर्जुन को देखने लगे।

इतने में द्रोणाचार्य की आज्ञा मिली और अर्जुन ने अपना पराक्रम दिखाना शुरू किया। क्या तो उसकी विद्या और क्या उसका कौशल। एक क्षण में अग्न्यास्त्र छोड़कर आग लगा देता

है तो दूसरे ही क्षण वरुणास्त्र से उसे बुझा देता है। कभी ज़रा सा बन जाता है तो कभी विराट् स्वरूप धारण कर लेता है। कभी पर्वतों को चकनाचूर कर देनेवाले बाण छोड़ता तो कभी छोटे-छोटे अंडों और कोमल फलों को बींध डालता। कभी बैल के सींग में बारीक सा छेद करके उसमें से बाणों को निकालता तो कभी बिजली के समान कड़कड़ाहट करनेवाले मेघास्त्र छोड़ता।

दर्शकवर्ग थोड़ी देर के लिए तो ऐसा स्तब्ध हो गया मानों किसीने चित्र खींच दिया हो। कुंती के हृदय में उत्साह समाता न था। भीष्म, कृपाचार्य आदि अर्जुन और द्रोण की तारीफ़ करने लगे। और द्रोणाचार्य को स्वयं ऐसा लगा मानों उनका आचार्यत्व सफल हो गया है। उनके दिल को बड़ी तसल्ली हुई।

अर्जुन ने अपना काम समाप्त किया। चारों भाई अर्जुन के चारों ओर इकट्ठे हो गये। अर्जुन ने पहले जाकर गुरु द्रोणाचार्य को प्रणाम किया। और उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। दुर्योधन और उसके भाई एक कोने में खड़े-खड़े यह सब देख रहे थे।

इतने में दरवाजे में एक बड़ा भारी धड़ाका हुआ।

"यह क्या हुआ? यह आवाज़ कैसी?

सबकी आँखें एक साथ दरवाज़े की तरफ़ गई ही थी कि इतने में एक युवक हाथों में शस्त्रास्त्र लेकर अंदर आ जाता है और रंग-भूमि की तरफ़ ललकार कर बोलता है—

"अर्जुन तूने जो-जो पराक्रम यहाँ बताये हैं वे सब और उनसे भी ज़्यादा मैं कर बताता हूँ। ले तू देख।"

ऐसा कहकर वह युवक तो अपना पराक्रम बताने लगा। उसे देखकर सारी सभा एकदम चकित हो गई। द्रोणाचार्य देखते रह गये; अर्जुन और पाण्डव देखते रहे; दुर्योधन देखता रहा; भीष्म पितामह और कृपाचार्य भी देखते रहे।

अभी दर्शक लोग आश्चर्य मुक्त हुए ही न थे कि उस युवक ने फिर गर्जना की—

"हे अर्जुन ! तू इन सब कुमारों में श्रेष्ठ गिना जाता है। गुरु द्रोणाचार्य तुझे अपना पट्ट शिष्य मानते हैं। इसलिए मैं तुझे अपने साथ द्वन्द्वयुद्ध के लिए निमंत्रण देता हूँ। इसे स्वीकार करो और मेरे साथ द्वन्द्व युद्ध करो।"

युवक के गर्जन से दुर्योधन के मन में बड़ा आनंद हुआ। वह सोचने लगा "ठीक। अब ज़रा अर्जुन का पानी उतरेगा।" भीम और सहदेव उस युवक की ओर कठोर निगाह से देखने लगे। द्रोणाचार्य को यह रंग में भंग होने जैसा लगा। दर्शक लोग भी ऊँचे-नीचे होने लगे और इसका परिणाम क्या होता है यह जानने के लिए उत्सुक होने लगे।

इतने में कृपाचार्य खड़े हुए और बोले—

"हे युवक यह अर्जुन महाराज पाण्डु और कुंति का पुत्र है। वह वर्ण से क्षत्रिय है और द्रोणाचार्य का शिष्य है। इसलिए उसके साथ द्वन्द्व युद्ध में उतरने के लिए यह आवश्यक है कि तू अपने कुल और जाति का सबको परिचय करा।"

कृपाचार्य के ये वचन सुनकर युवक थोड़ी देर के लिए झेंठा

पड़ गया । लेकिन मध्यान्ह के आकाश की ओर नज़र डालकर वह तुरंत ही सीधा खड़ा होगया और बोला—

"यह रंगभूमि केवल क्षत्रिय के लिए ही नहीं है। यहाँ तो जो पराक्रम करके दिखावेगा वही क्षत्रिय है। अर्जुन अगर सच्चा क्षत्रिय-पुत्र है तो आजाय मेरे सामने। उसमें क्षत्रिय का खून है यह कहने से क्या होनेवाला है। इस प्रकार खून का अभिमान तो जंगली पशुओं को ही शोभा देता है। मुझे विश्वास है कि अर्जुन ऐसे डरपोक पुरुषों के विचारों का अनुसरण नहीं करेगा। मैं मानता हूँ कि अर्जुन सच्चा मर्द है।"

युवक के ये वचन दुर्योधन के कान में अमृत के जैसे लगे। उसने अपने सब आदमियों को लेकर उस युवक को घेर लिया। इतने में भीम ज़ोर से गरज उठा--

"ओ मर्द की पूँछ! अपना वर्ण तो पहले बता। अर्जुन राजपुत्र है। राजपुत्र चाहे किसी राहचले भिखारी के साथ द्वन्द्व युद्ध में नहीं उतरा करते। आया है अपना पराक्रम जताने।"

भीम के वचन सुनते ही दुर्योधन छाती तानता हुआ अपने आदमियों के झुण्ड में से बाहर आया और कहने लगा—

"यह युवक राजा नहीं है केवल इसी कारण अर्जुन द्वन्द्व युद्ध में नहीं उतर रहा है। तो मैं इसे अंग देश का राजा बनाता हूँ।" यह कहते ही वहीं का वहीं दुर्योधन ने उसे कुंकुम का टीका काढ़कर उसे 'अंगराज' के नाम से पुकारा।

सभा में हाहाकार होगया। कोई तो अर्जुन की ओर कोई

उस नये युवक की, कोई दुर्योधन की और कोई भीम की तारीफ़ करने लगे। स्त्रियों के मंच पर कुंती बैठी हुई थी। उन्होंने जब यह दृश्य देखा तो उनकी आँखों के नीचे अंधेरा छा गया और बेहोश होकर वहीं गिर पड़ीं।

इसी बीच हाथ में चाबुक लेकर अधिरथ सभा में आया और यह जानकर कि उसका पुत्र वसुषेण अंग देश का राजा हो गया है तो वह खुश-खुश होता हुआ उसके पास गया और उसे छाती से लगा लिया। जब लोगों को यह मालूम हुआ कि यह युवक और कोई नहीं परंतु राधा का पुत्र है तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

भीम यह सब देखकर बोला—

"अरे सूतपुत्र! अपने पिता के हाथ में से चाबुक लेकर रथ हाँक भाई रथ! ये शस्त्र तुम्हारे हाथ में शोभा नहीं देते। सच्चे क्षत्रिय तेरे साथ युद्ध करने में अपनी हीनता मानते हैं।"

"भीमसेन अब चुप भी रहो। महापुरुषों और नदियों के मूल को खोजना बड़ा कठिन है। तुम पाण्डव ही किस प्रकार पैदा हुए हो यह किससे छिपा है। इस बात को आगे न बढ़ाने में ही कल्याण है।" दुर्योधन ने जवाब दिया।

इसी बीच भीष्म, कृपाचार्य, धृतराष्ट्र आदि खड़े हुए और सभा बिखरने लगी। गांधारी को लेकर कुन्ती घर गई। पाण्डवों को लेकर द्रोण घर गये। दर्शक वर्ग धीरे-धीरे खिसकने लगा। केवल कर्ण और कौरव ही वहाँ रह गये थे।

"कुमार दुर्योधन, मैं आपका बड़ा आभारी हूँ। मैं सूतपुत्र हूँ

इसका विचार न करके मुझे अंगदेश का राजा बना दिया और मेरी प्रतिष्ठा क़ायम रखी इसके लिए मैं आपका जन्म भर का ऋणी हो गया हूँ।"

कर्ण से आलिंगन करता हुआ दुर्योधन बोला—

"इसमें मैंने कुछ नहीं किया। क्षत्राणी के पेट से जन्म लिया इसलिए कोई बड़ा और दूसरी माँ के पेट से जन्म लिया इसलिए कोई छोटा, यह बात ही मैं सहन ही नहीं कर सकता। जो ऊँचा काम करेगा वह ऊँचा और जो नीच काम करेगा वह नीचा। मैं तो यह मानता हूँ।"

"फिर भी आपने मेरा पक्ष लिया इसलिए मैं तो आपका आभारी ही हूँ और आप जो कहो वह करने को तैयार हूँ।"

"मैं किसी चीज़ का भूखा नहीं हूँ। मुझे तो सिर्फ़ आपकी मित्रता चाहिए।"

"यह आप क्या कहते हैं? मित्रता तो है ही। कहाँ राधा का पुत्र मैं और कहाँ धृतराष्ट्र के कुंवर आप! कहाँ तो यह रंगमंडप और परीक्षा का समय और कहाँ एकाएक मेरा यहाँ आजाना; और फिर कहाँ मैं और कहाँ अंगदेश का राज्य! कहीं हमारे इसप्रकार इकट्ठा होने में ईश्वर का कोई संकेत तो नहीं है? मुझे आपकी मैत्री का शुभ अवसर मिले इसलिए शायद ईश्वर ने मुझे यहाँ भेजा हो? मैं आपको यह वचन देता हूँ कि यह कर्ण आज से दुर्योधन का मित्र है। सूर्य भगवान् को साक्षी में रखकर की गई यह मैत्री अखंड रहे।"

इतना कहकर कर्ण ने अपना हाथ दुर्योधन के हाथ पर रखा। सब कौरव अपने इस नवीन भाई को हर्ष से बधाई देने लगे और इसी खुशी में मन में अनेक मनसूबे बाँधते हुए वे रंग मंडप से घर आये।

: ३ :

'मैं सूतपुत्र को नहीं वरूँगी !'

राजा द्रुपद की पुत्री द्रौपदी का स्वयंवर था। द्रौपदी द्रुपद राजा के यज्ञ में से उत्पन्न हुई थी। उसका भाई भी उसी यज्ञ की अग्नि में से खड्ग-कवच और धनुष-बाण लेकर ही जन्मा था।

स्वयंवर में देश-विदेश के राजा आये थे दुनिया के मशहूर नट और वैतालिक, पौराणिक, मल्ल और ब्राह्मण भी आये थे।

शहर के बाहरवाले विशाल मैदान में स्वयंवर के लिए एक सुन्दर मण्डप बनाया गया था। मण्डप के दरवाज़े तोरण और पताकाओं से सुशोभित हो रहे थे। धूप और अगरू की सुगन्ध से सारी दिशायें सुवासित हो रही थीं। राजा-महाराजाओं के बैठने के लिए सिंहासन बनाये गये थे। पुरवासियों के लिए अलग मचान बनाया गया था। दूर के एक कोने में दक्षिणा की लालसा से आये हुए ग़रीब और दुबले-पतले ब्राह्मण जैसे-तैसे ठूंस ठांस कर बैठे थे।

स्वयंवर का समय हुआ। धृष्टद्युम्न आया और मेघ-गर्जन के समान गम्भीर स्वर से बोला—"स्वयंवर में आये हुए हे राजा-महाराजा गण, सुनिए! यह जो धनुष रखा हुआ है इससे इन बाणों को इस यंत्र के छिद्र में पांच बाण मारकर जो ऊपर का वह

निशान बींधेगा उसे मेरी बहन इस स्वयंवर में पसन्द करेगी।"

सारे राजा द्रौपदी को प्राप्त करने के लिए आकुल-व्याकुल हो रहे थे। दुर्योधन अपने भाइयों और कर्ण के साथ वहाँ उपस्थित था। गंधार से शकुनि आया था। अश्वत्थामा और विराट भी उपस्थित थे। चेकितान और भगदत्त को भी कम आशा नहीं थी। कंक और शंकु भी आये थे। शिशुपाल और जरासंध को भी उनका गर्व वहाँ खींच लाया था।

धृष्टद्युम्न के वचन सुनकर राजा लोग एक-के-बाद एक करके अपना पराक्रम बताने लगे। पर किसमें इतनी ताक़त थी जो धनुष चढ़ाता। राजा लोग धनुष को झुकाकर उस पर डोरी चढ़ाने जाते थे कि धनुष की नोक इतनी ज़ोर से छाती में लगती कि वे बेहोश होकर ज़मीन पर गिर पड़ते थे। उनका मुकुट एक ओर गिरता था और उनके आभूषण दूसरी ओर जा पड़ते थे। होश आने पर वे अपना सा मुंह लेकर अपनी जगह पर चले जाते थे। शिशुपाल जैसा राजा भी धनुष चढ़ाते-चढ़ाते घुटनों के बल गिर पड़ा और अपनी जगह पर भाग आया। महाराज शल्य आये और उनकी भी यही दशा हुई। महावीर जरासंध भी गिर पड़ा और उसके घुटने छिल गये।

ऐसी परिस्थिति में राधा-पुत्र कर्ण खड़ा हुआ और धनुष के पास गया। उसकी कान्ति मनोहर थी, उसकी चाल में गौरव था, उसके मुख पर पूरा आत्म-विश्वास था। ज्योंही कर्ण ने धनुष को हाथ लगाया कि सबको ऐसा लगा मानों निशान बिंध गया हो।

लेकिन कर्ण के भाग्य में द्रौपदी न थी।

द्रौपदी तो द्रुपद की पुत्री; द्रौपदी तो महा समर्थ धृष्टद्युम्न की बहन; द्रौपदी तो यज्ञ में से उत्पन्न हुई; द्रौपदी तो वीर क्षत्राणी।

कर्ण को धनुष चढ़ाते देखकर वह तुरन्त बोल उठी—"मैं सूतपुत्र को नहीं वरूँगी।"

ये शब्द कान में पड़ते ही कर्ण का सारा शरीर काँप उठा। तेजस्वी कर्ण, अंगदेश का राजा कर्ण, शस्त्रास्त्र में श्रेष्ठ कर्ण, कवच-कुण्डल धारण करनेवाला कर्ण, निस्तेज हो गया। उसका पराक्रम काफ़ूर हो गया। उसके गात्र शिथिल हो गये। ऐसा मालूम होने लगा मानों उसकी इन्द्रियाँ सो गई हों। "सूतपुत्र"—"सूतपुत्र" ये शब्द बार-बार उसके कानों से टकराने लगे। ब्राह्मण और क्षत्रिय कुल के इस खून के क़िले को धराशायी कर डालने का विचार एक क्षण के लिए उसके मन में गुजर गया।

पर इतने में तो उसका शरीर अपने स्थान पर आकर बैठ गया था।

: ४ :

परशुराम का शाप

"बेटा तू क्या कर रहा है? आज मेरे पास आकर क्यों नहीं बैठता है?" आश्रम के चबूतरे पर बैठते हुए गुरुजी ने पूछा।

"महाराज यह थोड़ी सी आग बाकी रह गई थी सो इसे बुझाकर यह आया।" कहकर कर्ण परशुराम के पास आकर बैठ गया।

"बेटा इधर देख। कल तू यहाँ से चला जायगा। यह सोच कर मेरे मन में न जाने क्या होने लगता है। क्या मेरे मन की हालत तू समझ सकता है?"

"क्यों नहीं समझ सकता? आपने मुझ पर असाधारण, कृपा करके मुझे जो विद्या सिखाई है उसका बदला मैं कब दे सकूँगा यही मैं सोचता हूँ?"

"ऐसा मत कहो। मैं ब्राह्मण हूँ। विद्यादान का बदला लेने का विचार तक मेरे खून में नहीं है। तू ब्राह्मण-पुत्र मेरे पास रहकर इतना सीखा यही मेरा बदला। परन्तु नहीं—नहीं······।"

कर्ण परशुराम के सामने देखकर बोला—"महाराज कहिए न, रुक क्यों गये?"

"नहीं······कुछ नहीं······।"

"कहिए न आपको जो कहना हो कहिए।"

"सुनेगा ? बात तो एक ही कहनी है। तू कांप क्यों रहा है ? तेरी आंखों में यह विह्वलता क्यों है ? तेरा मुंह पीला क्यों पड़ रहा है ?"

"यह तो यों ही आपको ऐसा लग रहा है। मुझे कुछ नहीं हुआ है। आप शांति पूर्वक कहिए।"

"यही कहना है कि अगर तू मेरा सच्चा शिष्य है तो पृथ्वी पर से क्षत्रियों का बीज नष्ट कर देना।"

"महाराज !"

"मैं महाराज नहीं; मैं क्षत्रियों का काल हूं। मेरा यह फरसा देख। इस फरसे से मैंने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियों से खाली कर डाला। मेरा नाम सुनते ही क्षत्राणियों का गर्भपात हो जाता था। ऐसा मेरा आतंक था।"

"महाराज फिर भी क्षत्रिय तो बच ही गये।"

"हां रह गये इसीका तो मुझे अफ़सोस है। इक्कीस-इक्कीस बार क्षत्रियों के कुल का उच्छेद कर डाला और जिस प्रकार दावानल जंगलों को जलाकर ख़ाक कर देता है उसी प्रकार उनका ह्रास किया फिर भी उनका बीज तो रहा ही।"

"महाराज !"

"सुन। इक्कीस-इक्कीस बार मैंने दुधमुंहे क्षत्रिय बालकों का सिर उड़ा दिया; इक्कीस-इक्कीस बार जवान-जवान क्षत्राणियों को विधवा बना दिया; इक्कीस-इक्कीस बार खून के बड़े-बड़े कुंड के कुंड भर

डाले और फिर भी जब क्षत्रियों का बीज नष्ट नहीं हुआ तब मैं हारा। मुझे लगा कि क्षत्रियत्व नष्ट करने में मैं जगत के ईश्वरीय संकेत के विरुद्ध चल रहा हूँ। इसलिए अपना फरसा लाकर मैंने इस कुटी में टांग दिया और अपना मन तपश्चर्या में लगाया।

"फिर मुझे क्षत्रियों का बीज नष्ट करने की आज्ञा क्यों?"

"बेटा तू मानव हृदय को नहीं पहचानता। तभी तो ऐसी बात पूछता है। यह फरसा यहाँ लाकर टाँग दिया है इसलिए तू यह समझता है कि मेरा दाह शांत हो गया? नहीं, बिलकुल नहीं। अगर ऐसा होता तो मैं अपनी यह रहस्य विद्या तुझे नहीं सिखाता। तब तो इस विद्या को, किसीके भी हाथ न लगे ऐसी जगह, कभी की दफ़ना दी होती।"

"अगर मैं क्षत्रिय होता तो आप मुझे वह विद्या सिखाते या नहीं?"

"इसका उत्तर तो तुम स्वयं ही हो न। शुद्ध ब्राह्मणपुत्र के सिवा मैं और किसीको नहीं सिखाता। दूसरा कोई सीखने आवे तो उन्हें जलाकर भस्म कर डालूँ। पर तू तो ब्राह्मण है। नीची निगाह क्यों करता है? ब्राह्मण जन्म तो इस जगत में सर्वश्रेष्ठ है। तुझे देखते ही मुझे ऐसा मालूम होने लगता है मानों मेरा अधूरा कार्य तू पूर्ण करेगा।"

"महाराज, आप बहुत उत्तेजित हो गये हैं। जरा शांत होइए। फिर आप जो कहेंगे वह सब मैं करने को तैयार हूँ।"

"बेटा जब तू यहाँ आया ही नहीं था तब तो मैं शान्त ही था। उस मंगल प्रभात में जब तू आगया, उसी समय अगर तूने यह

बताया होता कि तू क्षत्रिय पुत्र है तो मैं शान्त रहता; उसी दिन अगर तूने कह दिया होता कि तू वैश्य पुत्र है तो मैं शान्त रहता; उसी दिन तूने अपने को शूद्र पुत्र बताया होता तो मैं शांत रह जाता। लेकिन तूने तो अपने को ब्राह्मण पुत्र बताया और मेरे हृदय की पुरानी आग फिर प्रज्वलित हो गई। उसपर जो राख पड़ी हुई थी वह अपने आप उड़ गई और मैं भभक उठा। उसी भभक में मैंने तुझे विद्या सिखाई। तू मेरे जैसा कट्टर ब्राह्मण बने इस आशा से मैंने अपना हृदय निचोड़कर तुझे दे दिया और मेरी विद्या का तू बराबर उपयोग करेगा इसी श्रद्धा से तो कल तुझे यहां से विदा करके मैं निश्चिंतता से सोऊँगा।"

"महाराज, आप अस्वस्थ मालूम होते हैं, कुछ आराम करलें। फिर मुझे आप जो कहना चाहें कहिएगा।"

"आराम तो कल लेना ही है न? नहीं तो जिसके हाथ खून से सने हुए हों ऐसे मुझको इस जन्म में आराम कहां? आराम है मेरे हाथ को; आराम है मेरे पैर को; आराम है मेरे फरसे को; लेकिन आराम नहीं है केवल एक मेरी आत्मा को। आत्मा को तभी आराम मिलेगा जब तू उसे आराम देगा।"

"महाराज आप थोड़ी-सी देर लेटलें। नहीं तो मैं यहां से चला जाऊँगा। आपकी यह अस्वस्थता मुझसे नहीं देखी जाती।"

"ठीक अगर तू कहता है तो यही सही।"

"आप यहां मेरी जांघ पर सिर रखकर ही सो जाइए।"

× × × ×

"बेटा मुझे फुसलाता है। नहीं, तू ब्राह्मण ही है। तेरी देह पर गायत्री का तेज है। मुझे एक बार कह दे कि मैं ब्राह्मण हूँ तो काफ़ी है फिर मुझे और कुछ नहीं चाहिए।"

"तू बिलकुल कंजूस नहीं है यह मुझे ठीक नहीं लगता। तेरी उदारता देखकर मुझे आश्चर्य होता है। फिर यह भी मन में होता है कि ब्राह्मणों ने सारी पृथ्वी क्षत्रियों को दे दी है यह भी कम उदारता थी ?"

"तेरा मुँह ब्राह्मण के जैसा है ? तेरी कान्ति भी उतनी ही मोहक है। तेरे ये कवच-कुंडल किसी ब्राह्मण-दम्पति के व्रत-उपवास के फल हैं। तू ब्राह्मण ही है। परशुराम की विद्या को ब्राह्मण के सिवा और कोई पचा नहीं सकता।"

कर्ण की गोदी में परशुराम का सिर था। अर्ध-निद्रा और अर्धजागृत अवस्था में अपने दिल की बातें परशुराम के मुंह से निकल रही थीं। कर्ण कांपते हुए हाथों से परशुराम का शरीर सहलाता जाता था।

इतने में परशुराम एकाएक उठे और अपनी पीठ के नीचे देखा तो एक खून की धार बह रही है।

"बेटा, यह क्या ? यह खून कहाँ से आया ? तेरे पैर में यह क्या हुआ ?"

कर्ण खड़ा हो गया। उसका शरीर कांप रहा था। उसकी आँखें विह्वल थीं। उसकी वाणी भयभीत थी।

"महाराज..........."

"यह खून कैसे आया ?"

"महाराज, आपके सोजाने के बाद एक भौंरा उड़ता उड़ता इधर आया।"

"फिर ?"

"उस भौंरे ने मेरी जांघ में काट खाया।"

"तो तूने उसे उड़ा क्यों नहीं दिया ?"

"मैंने उसे उड़ाने की बहुत कोशिश की परन्तु वह तो मेरी जांघ को कुतर-कुतर कर अन्दर ही अन्दर घुसता जाता था। उसने गहरा छेद कर डाला।"

"इतना गहरा छेद कर दिया और तू कुछ भी न बोला ? और न हिला-डुला ?"

"आपके आराम में विघ्न न पड़े इसलिए मैं ऐसा ही बैठा रहा।"

परशुराम यह सुनकर चुप हो गये। उनका मन अन्तर में गहरे उतरकर कुछ सोचने लगा। क्षणभर के लिए उनकी आंखें मुंद गईं। फिर उन्होंने आंखें खोलीं और उन आंखों में से आग की चिनगारियां बरसने लगीं।

"सच-सच बता तू कौन है ?"

"महाराज यों आप क्यों पूछ रहे हैं ? मैं आपका शिष्य।"

"पर तेरा वर्ण कौन ?"

"ब्रा······ह्म······ण।"

"सच बता। तू ब्राह्मण नहीं है। जल्दी बता नहीं तो जलाकर भस्म कर दूंगा।"

कर्ण सहम गया। उसके सारे शरीर में पसीना आगया। उसकी आँखों के नीचे अंधेरा छा गया। उसके अंग शिथिल हो गये। उसका गला रुँधने लगा। उसकी जीभ मानों भाषा भूल गई हो।

"जल्दी उत्तर दे नहीं तो........"

"महाराज मैं सारथि-पुत्र कर्ण हूँ।"

"एँ........! सारथि-पुत्र? धिक्कार है तुझे। तूने मेरी विद्या को भ्रष्ट कर दिया। तूने मुझे धोखा दिया। अपने को ब्राह्मण-पुत्र बताते तेरी जीभ गलकर गिर क्यों न गई?"

"महाराज, मेरा अपराध क्षमा कीजिए। अर्जुन के प्रति वैर-बुद्धि से प्रेरित होकर मैं आपके पास आया था। आपकी इस कृपा को मैं कभी भी नहीं भूलूंगा।"

"और मैं भी तो इतना मूर्ख था न कि तुझे अन्त तक ब्राह्मण-पुत्र मानता ही रहा। आज तो मुझे स्पष्ट दिखाई देता है कि तू ब्राह्मण पुत्र नहीं है।"

"महाराज मुझे मेरी भूल के लिए क्षमा कीजिए।"

"कर्ण, तेरा कहना ठीक है। क्षमा करना ब्राह्मण का धर्म है। मैं यह समझता भी हूँ। मैं यह भी जानता हूँ कि आदमी जब वैर-बुद्धि से प्रेरित होता है तब क्या-क्या नहीं कर डालता। लेकिन इतने वर्षों के बाद मुझे एक ब्राह्मण-शिष्य मिला और उसके ऊपर मैंने आशा का जो महल खड़ा कर लिया था वह आज ढह पड़ा, इसीका मुझे बड़ा आघात लगा है। इक्कीस बार पृथ्वी

को उजाड़ करके जब यहां आया था तो जीवन वीरान-सा लगता था। पर तेरे आने से वह फिर हरा-भरा हो गया। लेकिन नहीं, जगत के ईश्वरीय संकेत के विरुद्ध आशा रखनेवालों की आशायें इसी प्रकार नष्ट हो जाती हैं, यही इसपर से मुझे समझ में आता है।"

"महाराज मुझे क्षमा कीजिए। कल के बजाय मैं आज ही यहां से विदा हो जाता हूँ।"

"कर्ण! क्षमा करने की इच्छा तो बहुत होती है लेकिन कर नहीं सकता। मैंने तुझे अपने प्रिय पुत्र के समान रखा। रात में जब तू सोया रहता था तो तेरे कानों में मैं अपनी विद्या के रहस्य भरता रहता था। यह सब मैंने अपनी वैराग्नि को तृप्त करने के लिए ही तो किया। अगर तू न आया होता तो तपश्चर्या में मैं न जाने कितना आगे बढ़ गया होता।"

"महाराज, मुझे किसी प्रकार क्षमा करें।"

"क्षमा तो तुझे उसी दिन से कर दिया जब से पुत्र समझा।"

"तो महाराज! आशीर्वाद दीजिए ताकि यहां से मैं विदा लूँ।"

"शाप समझ या आशीर्वाद समझ: इस समय तो मेरे दिल से एक ही आवाज़ निकलती है कि मेरी दी हुई विद्या अपने अंत समय में तू भूल जायगा।"

"महाराज, क्षमा कीजिए। आपके लिए यह उचित नहीं है।"

"कर्ण, सुन। जब तेरा अंत समय आवेगा तो रणभूमि में तेरे रथ का पहिया पृथ्वी में धंसने लगेगा। और उसी समय तू अपनी विद्या भी भूल जायगा।"

"भगवन् बस कीजिए। यह तो हद हो गई।"

"जा, अब तू सुख से घर जा। मेरा दिल आज हलका हो गया। जिस वैर को मैंने आज तक सगे बेटे के समान पाल रखा था उसी वैर ने मेरे सारे जीवन को खट्टा बना दिया। मैंने सोचा था कि विरासत में यह वैर मैं तुझे दे जाऊँगा और फिर शांति से रहूँगा। लेकिन ऐसी शांति प्रभु किसे देते हैं ? आज जिस प्रकार तुझे यहाँ से विदा दे रहा हूँ उसी प्रकार इस वैर को भी छुट्टी दे रहा हूँ। कर्ण, मारकाट और खून-खच्चर से हृदय की और विश्व की शांति खोजनेवाले सब लोगों को बताना कि परशुराम ने इसी तरह की शांति प्राप्त करने के लिए क्या-क्या नहीं किया लेकिन परिणाम में तो उसे अशांति ही मिली। पर तुझे भी तो अर्जुन को मारना है। इसलिए अभी यह बात तेरी समझ में नहीं आयगी। लेकिन याद रखना कि तेरे दुर्योधन, दुःशासन अर्जुन, भीम और खुद युधिष्ठिर को यह बात समझनी पड़ेगी। इसके बिना कोई चारा नहीं है। फिर भले आज समझो या खून में हाथ रंग लेने के बाद, मेरे समान, अंत समय में समझो।"

"महाराज अब विदा लेता हूँ। मुझ पर कृपा दृष्टि बनाये रखिएगा।"

"कृपा दृष्टि तो तुझ पर और मेरे पर उस ईश्वर की ही है। तुझे यहाँ लाकर मेरे हृदय का अंधकार दूर करने का ही शायद उसका आशय रहा हो। जाओ बेटा, राधा तुम्हारी राह देख रही होगी।"

: ५ :

जननी के पास

महल के पास के एक लता मण्डप में कर्ण खड़ा-खड़ा इष्ट मंत्र का जप कर रहा था। हर रोज़ मध्याह्न तक इस प्रकार जप करने उसका नियम था। वह आंखें मूंदकर माला फेर रहा था। उसी बीच एक स्त्री आई और उसके पीछे छिपकर खड़ी हो गई। उम्र से स्त्री वृद्धा थी। उसके सिर पर के बाल सफ़ेद हो गये थे। शरीर पर झुर्रियां पड़ गईं थीं फिर भी उसकी आँखों का तेज किसी वीरांगना को भी शरमाने जैसा था।

मध्याह्न ढला, कर्ण का जप यज्ञ पूरा हुआ और पीछे फिर कर देखता है तो एक स्त्री खड़ी है।

"तुम कौन हो?" और उसकी ओर ध्यान से देखकर फिर बोला—"ओहो आप तो कुंती! आप यहाँ कैसे?"

"बेटा एक चीज़ माँगने आई हूँ।"

"श्रीकृष्ण की बुआ और वीर अर्जुन की माता मुझ जैसे सूत-पुत्र से किस चीज़ की आशा रखती हैं?"

"बेटा जैसे मैं वीर अर्जुन की माँ वैसे ही सूतपुत्र कहे जाने वाले कर्ण की भी माँ हूँ। तू राधा का पुत्र नहीं मेरा पुत्र है।" कुंती ने कहा।

"नहीं, नहीं, मेरा मल-मूत्र उठानेवाली और मुझ अकेले पर ही अपने जीवन का आधार रखनेवाली राधा मेरी माँ नहीं है, जिस दिन मैं यह मानूँगा उस दिन आकाश टूट पड़ेगा।" कर्ण ने कहा।

"बेटा, मेरी बात भी तो ज़रा सुन। मैं कुंतिभोज राजा की पुत्री। मेरे पिता के यहाँ बहुत से महापुरुष अतिथि आया करते थे। उनकी सेवा करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था।"

"कुंती, ये सारी बातें मैं जान चुका हूँ। अभी कल ही श्रीकृष्ण मुझे रथ में बिठाकर लेगये थे और उन्होंने सारी बातें विस्तार से बताई थीं। यह बात जब मैं सुनता हूँ तो मेरे रोएं खड़े हो जाते हैं।" कर्ण की आवाज़ बदलने लगी।

"कर्ण, ज़रा शांत हो। तुझे अगर क्रोध आवे तो मुझे जितना कहना हो कहना। मैं सब चुपचाप सहलूंगी। परंतु मेरी बात तो पहले सुनले। मुझे एक भी लड़की नहीं है जो उसके सामने अपना दिल खोलकर रख सकूँ। इतने वर्षों बाद जब तुमसे मिलती हूँ तो मेरे इन सूखे हुए स्तनों में भी दूध की धार उतर आती है। मुझे अपनी बात कह तो लेने दे जिससे मेरे दिल का भार हलका हो।"

"अच्छा, कहो।"

"कुंतिभोज के यहाँ एक बार दुर्वासा ऋषि पधारे। मेरी सेवा-चाकरी से वह प्रसन्न हुए और मुझे पाँच मंत्र दिये और कहा कि इन मंत्रों से तू जिस किसी देवता का आवाहन करेगी

वह आकर उपस्थित होगा। स्त्री मात्र का हृदय जिस एक वस्तु के लिए तरसता रहता है वही वस्तु तुझे इन मंत्रों से प्राप्त होगी।"

"फिर ?"

"मैं तो थी कुंआरी। स्त्री का हृदय किस एक वस्तु की लालसा करता है यह तो मुझे मालूम नहीं था। इस कारण मेरा कुतूहल बढ़ा। इस मंत्र का प्रयोग करके मैंने सूर्यनारायण का आवाहन किया।"

"फिर ?"

"तेजस्वी सूर्यनारायण प्रकट हुए। मैं तो कुछ भी नहीं समझी। लेकिन मेरे हृदय में एक बड़ा भारी तूफान चलने लगा था। सूर्य ने पूछा—'मुझे क्यों बुलाया है ?' मैंने कहा—'आप वापस जाइए।' मैं कन्या थी। मेरे शरीर में खून उछल रहा था। मेरे अंग-प्रत्यंग फटे पड़ते थे। मैंने सूर्य के सामने आड़े हाथ कर लिये। मैंने कहा—'मैं कुंआरी हूँ। समाज मुझे क्या कहेगा ?' लेकिन सब व्यर्थ। मेरी आत्मा परवश थी। मना करते-करते भी मैं सूर्य की तरफ़ खिची जाती थी।"

"फिर ?"

"फिर तो नौ महीने नौ युग के समान लंबे हो गये। न कहीं बाहर निकल सकती थी न किसी को मुंह दिखा सकती थी। शरम का ठिकाना नहीं। इस प्रकार करते-करते बेटा तू आया। तेरे ये कवच और कुंडल उस समय कैसे शोभा देते थे। मैं तो उन्हें देखकर अघाती न थी।"

"फिर ?"

"फिर ? फिर·········तुझे छोड़ा। रेशमी कपड़े में लपेट कर तुझे पेटी में रखा और अपने हाथों से अपनी आँखें मूंद ली। दासी ने पेटी बंद कर दी।"

"फिर ?"

"फिर मेरा तुझ पर से अधिकार उठ गया और तेरी राधा का अधिकार शुरू हो गया।"

"फिर ?"

"बेटा, अब भी फिर-फिर कहकर मुझे चिढ़ाता क्यों है ?"

"तो अब आज क्या मांगने आई हो ?"

"मैं एक ही चीज़ मांगने आई हूँ कि तू मेरी छाती में वापस आजा और मुझे माँ कहकर बुला।"

"कुन्ती, कुन्ती, आपको यह माँगते शरम नहीं आती ? जो स्त्री अपने पेट के बालक को नदी में बहाते हुए झिझकी नहीं वह आज माँ होना चाहती है; क्या यह उचित है ?"

"बेटा कर्ण, ऐसा मत बोल। तुझे अभी स्त्री-जीवन की खबर नहीं है।"

"तुमको किसने कहा था कि इस रास्ते जाओ।"

"तूने कुँआरी अवस्था नहीं बिताई है। इस अवस्था में होने-वाली दिल की उथल-पुथल को तूने अनुभव नहीं किया है। यह अवस्था ही मनुष्य को कितना विह्वल कर डालती है इसका तुझे ख़याल नहीं है।"

"यह तो भले ही चाहे जो हुआ। परन्तु तुम्हें मेरा त्याग करने का क्या अधिकार था? जो माता अपने बालक का सर्वांग सुन्दर विकास न करे उसको माता होने का क्या अधिकार है?" कर्ण गरम हुआ।

"बेटा, तेरी बात बिलकुल सच है। लेकिन बेटा स्त्री माता होती है तो अपनी बुद्धि से अंकगणित की गिनती करके होती है क्या? इसमें तो प्राणिमात्र अन्तर की एक धड़कन के वशीभूत होकर बरतते हैं और माता-पिता का धर्म, अधिकार, विकास वग़ैरा तो सब बाद में पैदा होते हैं।"

"परन्तु तुमने मेरा त्याग किया यह बात नहीं भूल सकता।"

"बेटा, यह तो भूलने जैसी है भी नहीं। लेकिन इसका दोष तुझे समाज को देना चाहिए। हमारा समाज ऐसी भूलों को क्षमा नहीं करता, उल्टे घाव पर नमक छिड़कता है। इसीसे मेरे जैसी माताओं को ग़लत रास्ता लेना पड़ता है। ऐसी भूलें न होने पावें इसके लिए समाज उचित उपाय करे यह ज़रूरी है। लेकिन भूल हो जाने पर उदार दृष्टि से उस पर विचार करे और उसको हल करे तो मेरे ख़याल से समाज के कितने ही ख़ानगी पाप अपने आप कम हो जायँगे।"

"परन्तु कुंती, तुमने मेरा तो बुरा ही किया न? जन्म से क्षत्रिय होते हुए भी मैं सूतपुत्र कहाया। और वह तुम्हारे पाप के कारण।"

"ज़रूर। यह बात तो आज भी मुझे जला रही है। पांडव

और कौरवों की परीक्षा के समय जब तूने अर्जुन को द्वन्द्वयुद्ध में ललकारा तो उस समय कृपाचार्य ने और भीम ने जो तेरा 'कुल और गोत्र' पूछा और तुझे हीन बताया उस समय मैं बेहोश हो गई थी यह तुझे मालूम थोड़े ही है। द्रौपदी के स्वयंवर में जब धनुष चढ़ाने को तू खड़ा हुआ तब द्रौपदी ने कहा कि मैं सूतपुत्र को नहीं वरूँगी यह समाचार सहदेव ने जब मुझे सुनाया तो मेरे हृदय में कैसा मंथन होने लगा था उसका तुझे ख़याल ही कहाँ से हो सकता है। बेटा, तुझे मेरे कर्मों के कारण सूतपुत्र होना पड़ा इसमें ज़रा भी शङ्का नहीं हैं। लेकिन आज तो सब भूल जा और मेरी गोदी में वापस आजा।"

"कुंती, तुम्हारी बात मेरी समझ में थोड़ी-थोड़ी आती है। आज न जाने क्यों मेरे जीवन का रोष उतर जाता है। लेकिन मैं फिर से तुम्हारा हो जाऊँ यह सम्भव नहीं मालूम होता। राधा ने सगी मां के प्रेम से मेरा पालन-पोषण किया है। सूत जाति में मैंने शादी की है और मुझे लड़के-बच्चे हुए हैं। उस सारे स्नेह सम्बन्ध को छोड़कर कुन्तीपुत्र होना मेरे लिए असम्भव है।

"बेटा, इस तरह मत बोल। तेरी राधा के मैं पैरों पड़ूंगी। जैसे द्रौपदी मेरी बहू वैसे ही तेरी स्त्रियाँ भी मेरी बहू। तू युधिष्ठिर का बड़ा भाई। पांचों पाण्डव तेरी सेवा करेंगे। और युद्ध के अंत में जब तू इस भारतवर्ष का राजा होगा तभी यह कुंती तृप्त होनेवाली है। तू तो राजा होने के लिए ही पैदा हुआ है।"

"कुंती, तुम जो कुछ कहती हो वह चाहे जितना अच्छा

दिखाई दे फिर भी मेरे लिए तो वह असंभव है। भारतवर्ष के राजा या तो युधिष्ठिर होंगे या दुर्योधन होगा।"

"नहीं, नहीं। मैं तो चाहती हूँ कि युधिष्ठिर तेरे पास खड़ा रहकर तेरी सेवा करे। और जहाँ तुम जैसे और अर्जुन जैसे वीर मेरे पुत्र हों वहाँ दुर्योधन के लिए राज्य की आशा ही कहाँ है ?"

"कुंती, मुझे क्षमा करो। स्वार्थ के वश होकर तुम मुझे अधर्म की तरफ़ ले जा रही हो। जिस समय सारे हस्तिनापुर में सब लोग मुझे 'सूतपुत्र', 'सूतपुत्र' कहकर दुत्कारते थे तब दुर्योधन ने मुझे अंगदेश का राजा बनाया। जब भीष्म, द्रोण, और विदुर जैसे महात्मा भी कौआ कहकर मेरा तेजोवध कर रहे थे उस समय दुर्योधन ने मुझे अपने पास रखकर मित्रता को क़ायम रक्खा। जब युद्ध करना या न करना इस पर चर्चा और निर्णय हो रहा था तब मेरी मित्रता के आधार पर ही दुर्योधन ने श्रीकृष्ण को वापस लौटा दिया और युद्ध स्वीकार किया। आज उस दुर्योधन की मित्रता के पाए को तोड़कर मैं फिर तुम्हारा हो जाऊँ इसमें तुम्हारी क्या शोभा है ? तुम स्वार्थ से अंधी हो गई हो इसलिए यह चाहती हो। तुमको यह पता नहीं कि अभी भी अर्जुन श्रीकृष्ण की मित्रता को छोड़ सकता है लेकिन कर्ण दुर्योधन की मित्रता नहीं छोड़ सकता।"

"तो मुझे इस प्रकार एकाएक निराश करेगा ?"

"कुंती, दूसरा कोई रास्ता ही नहीं है।"

"रास्ते अगर निकालने ही हों तो बहुत हैं। लेकिन तुझे निकालना जो नहीं है। लड़ाई में तू अपने हाथों अपने ही सगे भाइयों को मारेगा तब तेरा हृदय फटेगा नहीं? युधिष्ठिर को मारते हुए तेरा हाथ उठेगा? नकुल और सहदेव जैसे मेरे कोमल कुमारों को तू मारेगा? कर्ण, ज़रा विचार तो कर। तू तो सब यह कर सकेगा। लेकिन तुम सबको एक ही पेट में से जन्म देने वाली इस कुंती का उस दिन क्या होगा इसका भी कुछ विचार किया है?"

"कुंती, यह तो लड़ाई का मामला है। क्षत्रिय ऐसी बातों से डरते नहीं हैं।"

कुंती आगे आई और घुटनों के बल पड़ गई। उसका हाथ कर्ण के घुटनों पर था।

"बेटा, मेरी तरफ़ देख तो। तेरे पास कौन आया है यह तेरे ध्यान में है?"

"हाँ, तुम कुंती।"

"अब इस तटस्थ नाम का उपयोग मत कर। मैं कुंती तेरी माँ हूँ। संग्राम में कूदकर तुझे अपने ही भाइयों को मारना हो तो उसके पहले तू यहीं मेरा वध कर डाल ताकि उसे देखने का मौक़ा ही मुझे न मिले। तेरा धर्म-अधर्म, तेरी मैत्री, तेरा क्षत्रियत्व ये सब तेरी इस माँ के सामने टिक रहे हैं इसीका मुझे आश्चर्य होता है। नहीं तो माता की आँख का एक आँसू इन सबको मिटा डालने को समर्थ है। कर्ण मेरी तरफ़ देख। ऊपर तेरे पिता बैठे

हैं। उस पिता की साक्षी में मैं तुझसे माँगती हूँ कि, संग्राम में पाण्डवों को न मारने का वचन मुझे दे।"

कर्ण चुप रहा।

"कर्ण, बोल, जवाब दे।"

"कुंती, मुझे जाने दो।"

"यों नहीं जा सकता। अपनी माता को इतनी सी भीख दिये बिना तू नहीं जा सकता।"

"कुंती, ठीक तो मैं नकुल और सहदेव को नहीं मारूँगा।"

"यह तो ठीक ही है। नकुल और सहदेव के ऊपर तेरे जैसा धनुर्धारी हाथ उठावे तो यह हलकापन हुआ। वे क्या तेरी बराबरी के हैं? इसमें मुझे तूने क्या दिया?"

"कुंती, नकुल-सहदेव को तो नहीं ही मारूँगा, पर भीम को भी नहीं मारूंगा।"

"भीम को! कहाँ तू और कहाँ भीम! मोटा शरीर होने से भीम क्या बड़ा हो गया? भीम का तो पागल जैसा काम होता है। भीम तेरी विद्या भी तो नहीं जानता इसलिए उसे मारने में तो खुद तुझे भी मज़ा न आयगा।"

"कुंती, कुंती, अब बस करो। मेरे दिल में न जाने क्या हो रहा है। यह आखिरी बार कहे देता हूँ कि मैं युधिष्टिर को भी लड़ाई में नहीं मारूंगा। जाओ, अब इसके आगे माँगोगी तो तुम्हें अपने कर्ण की सौगंध है।"

"बेटा, अंत में मेरा हुआ न? पर मेरी माँग तो अधूरी ही

रह गई न ? मैं तो माँगनेवाली थी कि तू अर्जुन को मत मारना।"

"कुंती, अगर तुम्हें यही माँगना है तो अपने ही हाथों मुझे मार डालो यही अच्छा है। अर्जुन को न मारने का वचन देना यह मेरे लिए आत्महत्या कर लेना है। दो दिन के वाद जो युद्ध होनेवाला है वह पांडव और कौरवों के वीच नहीं वल्कि मेरे और अर्जुन के वीच होगा। दुर्योधन ने यह सारी लड़ाई मेरे वल पर मोल ली है। और मैं तुमको यह वचन दे दूँ इसकी अपेक्षा प्राण त्याग करना वेहतर है। कुंती, अव जाओ।"

"तो वेटा, यह चली। मैं आई थी तुम्हें लेकर पाँच के छः पांडव करने की आशा से। लेकिन अव जाती हूँ पाँच के चार पांडव करने के समाचार लेकर। वेटा कर्ण, पुत्र माताओं को इसी प्रकार जगत में संतोष देंगे क्या ? क्यों वोलता क्यों नहीं ?"

"तो कुंती, खड़ी रहो। सुनो, एक वात कहता हूँ। लड़ाई में अगर अर्जुन मारा जायगा तो कर्ण पाण्डवों के साथ मिल जायगा। परंतु······परंतु यह विचार करना ही व्यर्थ है। आज थोड़ी देर के लिए अगर काल की चादर को फाड़कर उसपार देखता हूँ तो दीखता है कि श्रीकृष्ण जिसके सारथि हैं ऐसे अर्जुन का ही विजय है। और उसके हाथों ही मेरी मृत्यु है। अस्तु। जो होना होगा वह होगा। अगर अर्जुन रणभूमि में काम आयगा तो मैं तुम्हारा हो जाऊँगा। और मैं काम आऊँगा तो कुछ कहता नहीं। पाण्डव पाँच के छः नहीं हो सकते उसी प्रकार पाँच के चार भी नहीं होंगे। यह निश्चित है। वस, अव तुम जाओ।"

"कर्ण, एक बात पूछने की इच्छा होती है। पूछूँ ?"

"खुशी से पूछो।"

"कल श्रीकृष्ण को तूने क्या वचन दिया था ?"

"श्रीकृष्ण को ? कुछ भी नहीं। कुंती, श्रीकृष्ण मेरे पास एक राजनैतिक पुरुष की हैसियत से आये थे। उनकी बातों में मेरी महत्वाकांक्षाओं को पोषण मिलनेवाली चीज़ें थीं। श्रीकृष्ण ने मेरे सामने राजपाट रखा, मुकुट रखे, प्रतिष्ठा रखी, ऐश्वर्य रखा, स्वर्ग रखा; परंतु उनको मालूम नहीं है कि मेरे मन में तो दुर्योधन की मैत्री के सामने इन सब का कोई मूल्य नहीं है। कुंती, एक बात कहे देता हूँ। तुम आज यह वचन लेकर जारही हो उसका कारण समझीं ?"

"क्या, बताओ।"

"तुम्हारी माता के रूप में जीत हुई है। तुमको शुरू में जब देखा था उस समय तो मैं क्रोध से कांप रहा था पर तुम्हारे सामने मेरा क्रोध टिक नहीं सका। कुंती, पैदा करनेवाली माता के अन्तर में कितना स्नेह होता है यह मुझे आज मालूम हुआ। मुझे आज ऐसा लगता है कि पाण्डव और कौरवों के बीच सन्धि कराने के लिए श्रीकृष्ण के बदले तुम और गांधारी आई होतीं तो यह लड़ाई रुक सकती थी।

"राजनैतिक पुरुष चाहे जितनी संधि-चर्चायें करें परन्तु उनके हृदय में युद्ध खेल रहा होता है। इस कारण उनके हाथों जगत को शांति मिल ही नहीं सकती। उनके मुंह में चाहे जितने

मीठे शब्द हों तो भी उनके शब्दों के गर्भ में ज़हर होता है। कुंती, जगत की अशांति और तूफ़ान अगर किसी दिन शांत होने वाले होंगे तो वे हमारे जैसे योद्धाओं से नहीं शांत होंगे या श्री कृष्ण जैसे राजनैतिक पुरुषों से भी शांत नहीं होंगे, यह तूफ़ान, यह सर्वनाश, यह अराजकता और यह वैर-भाव शांत होगा जगत की माताओं से। इसका आज मुझे विश्वास हो गया है। जगत् को इस प्रकार के महाभारतों में से बचा लेने के लिए न तो वीरों की ज़रूरत है और न चालाक राजनैतिक पुरुषों की, न ज़रूरत है बड़े-बड़े व्यापारियों की और बड़े-बड़े कारीगरों की। ज़रूरत है केवल एक माता की। लेकिन आज तो यह सब व्यर्थ है। युद्ध के डंके बज चुके हैं और काल सबको बुला रहा है। कुन्ती, अब जाओ। बहुत देर हो गई है।"

कुन्ती घुटनों के बल पड़ी थी सो खड़ी हुई। उसने कर्ण का सिर सूंघा। कर्ण ने झुककर कुंती के पैर छुये और मां-बेटे एक दूसरे को देखते-देखते अलग हुए।

: ६ :

दानवीर

कर्ण अपने लता मण्डप में खड़ा-खड़ा जप कर रहा था। ऊपर आकाश में सूर्यनारायण खूब तप रहे थे। नौकर ने आकर कहा—"महाराज दरवाज़े पर एक ब्राह्मण आकर खड़ा है, वह अंदर आना चाहता है।"

कर्ण के मुंह पर आनंद की रेखा झलक उठी। उसके शरीर में नया ज़ोर आ गया। "जाओ उन महात्मा को अंदर ले आओ।"

थोड़ी ही देर में कर्ण के आसन के पास एक ब्राह्मण आकर खड़ा हो गया। उसका क़द छोटा था, आँखों में चपलता थी, कंधे पर जनेऊ था, गले में रुद्राक्ष की माला थी और हाथ में कमंडल था।

"पधारिए महाराज।"

"कर्ण!"

"महाराज, क्या आज्ञा है? आप ज़रा सामने आइए ताकि मैं आपका दर्शन तो कर सकूँ।"

"राजन, सन्मुख तो फिर आऊँगा, पहले तू यह वचन दे कि जो मैं माँगूंगा वह तू मुझे देगा।"

"महाराज, आप नहीं जानते कि मैं मध्यान्ह तक जप करता

हूँ। इस बीच कोई भी ब्राह्मण आकर मुझसे जिस किसी चीज़ की मांग करता है वह मैं अवश्य पूर्ण करता हूँ।

"मैंने तेरे विषय में ऐसा बहुत कुछ सुना है इसीलिए तो मैं बहुत दूर से आ रहा हूँ।"

"बोलिए महाराज, क्या इच्छा है ?"

"इच्छा ? यों देखो तो कुछ नहीं, बिलकुल ज़रा सी है। फिर भी मुझे भय है कि शायद मेरी इच्छा पूरी न हो।"

"अच्छा ! आपको ऐसा मालूम होता है कि कर्ण अपनी प्रतिज्ञा का भंग करेगा।"

"हाँ, मुझे इसका भय है।"

"तो फिर आप कर्ण को पहचानते नहीं हैं। सुनिए जिस दिन कर्ण का वचन मिथ्या होगा उस दिन सूर्य पश्चिम में उगेगा। आप मांगिए।"

"मांगूँ ? पर अब मेरे मन में ऐसा आता है कि मैं वापस चला जाऊँ। तुम सुख से रहो।"

"नहीं, नहीं, खुशी से मांगिए। संकोच बिलकुल न करें।"

"कर्ण, अच्छा तो फिर मांगता हूँ। तुम अपना यह कवच और कुंडल उतार कर मुझे दे दो।" इतना कहते-कहते ब्राह्मण का मुंह काला पड़ गया। उसके सारे शरीर पर पसीना आ गया।

कर्ण के मुंह पर हास्य की रेखा छा गई। उसके रोमांच खड़े हो गये। और अपने शरीर पर से वह कवच और कुण्डल उखाड़ने लगा। सर्प को केंचुल उतारते कितनी देर लगती है ?

सारा शरीर छिल गया खून की धारा बहने लगी। आकाश में सूर्यनारायण एक काले से बादल की आड़ में छिप गये। मण्डप के पक्षीगण कलरव करने लगे। लताओं ने पुष्पों की वृष्टि की और देखते-देखते कवच और कुण्डल ब्राह्मण के हाथ में आ गये।

"लीजिए महाराज, यह कवच और कुण्डल। अब तो आप सामने आइए। बगल में क्यों खड़े हैं?"

"मेरी तबीयत इस समय ठीक नहीं है, इसलिए अब इन्हें लेकर मुझे जाने दे। अब मुझे तुम्हारे सामने नहीं आना।"

ब्राह्मण ने विदा ली। कर्ण उसको जाते हुए देखता रहा। वह ब्राह्मण थोड़ी ही दूर गया था कि फिर रुक गया। और नीची गर्दन किये चुपचाप कर्ण के सामने देखने लगा।

"महाराज, खड़े क्यों रह गये? और कोई दूसरी इच्छा है?" कर्ण ने प्रश्न किया।

"यह दरवाज़ा बन्द है।"

"मैं यहांसे देख रहा हूँ। वह तो खुला है। आपको कोई नहीं रोकेगा। आप निःशंक होकर जाइए।"

ब्राह्मण दो क़दम आगे जाकर फिर रुक गया।

"क्यों महाराज, रुक क्यों गये। आप सुख पूर्वक पधारिए।"

"राजन्, मेरे पैरों में अब आगे जाने की ताक़त नहीं रही।"

"महाराज, आपको जहां जाना होगा वहीं मेरा रथ आपको छोड़ आवेगा।"

कर्ण ने नौकर को रथ लाने का आदेश दिया। रथ हाज़िर हुआ। लेकिन ब्राह्मण तो खड़ा ही रहा।

"महाराज, अब पधारिए। रथ तैयार है।"

ब्राह्मण के पैर रथ की तरफ़ जाने के बदले कर्ण की तरफ़ उठे। फिर वह कर्ण के पास आकर खड़ा हो गया।

"क्यों महाराज, और कोई आज्ञा है ?"

"हाँ, एक आज्ञा है। तुम मुझ से कुछ मांगो।"

"मेरे लिए आपका आशीर्वाद ही काफ़ी है। आप मेरे सामने नहीं आते हैं यही मैं अपना दुर्भाग्य समझता हूँ।"

"दुर्भाग्य तो मेरा है बेटा। तूने मुझे पहचाना नहीं।"

"मैंने आपको पहचान लिया है। आप अर्जुन के पिता इन्द्र हैं।"

"कर्ण, कर्ण, तूने तो ग़ज़ब कर दिया। मैं इन्द्र हूँ यह तुझे कैसे मालूम हुआ ?"

"यह आप जानते ही हैं कि जिस प्रकार आप अर्जुन के पिता हैं उसी प्रकार सूर्यनारायण मेरे पिता हैं। जैसे आप दिन रात अर्जुन की चिंता किया करते हैं वैसे ही सूर्यनारायण मेरी चिंता किया करते हैं। आप ब्राह्मणवेश में मेरे कवच-कुंडल लेने के लिए आनेवाले हैं इसकी सूचना उन्होंने कल ही मुझे स्वप्न में देदी थी।"

"बेटा कर्ण, तू यह क्या कहता है ? मैं इन्द्र हूँ यह भी तू जानता था ? यह मैं अर्जुन के लिए ले जाता हूँ यह भी तू जानता था ?"

"यह सब सूर्य भगवान ने मुझे बता दिया था।"

"फिर भी तूने यह सब मुझे क्यों देदिया? युद्ध में तुझे भी तो विजय की आशा होगी ही।"

"होगी ही नहीं है ही। इस विचार से तो मुझे आपको इनकार करना चाहिए था। लेकिन मैं तो कर्ण हूँ न? एक बार मैंने प्रतिज्ञा की कि जप करते समय मांगनेवाला खाली हाथ न जायगा तो नहीं ही जायगा।"

"सूर्यनारायण ने तो तुझे ऐसा करने से मना तो किया ही होगा।"

"वह तो मना ही करेंगे। आप अर्जुन के लिए जितना परिश्रम उठाते हो, कपट वेश धारण करते हो, झूठ बोलते हो तो पिता के हृदय को तो मेरे बजाय आप अच्छी तरह जानते हैं।"

"कर्ण," देवराज कर्ण के पैर छूते हुए बोले—"कर्ण, तू नमस्कार के योग्य है। सच कह दूँ? मैं पहले पहल जब तेरे पास आया था तो तेरे बगल में खड़ा रहा था। सामने खड़ा रहकर तेरा तेज बर्दाश्त करने की ताक़त मुझ में नहीं थी।"

"अब आप सुखपूर्वक पधारिए। रथ तैयार है।"

"कर्ण, पर क्या तू यह मानता है कि मेरे पैर दर्द करते थे इसलिए मैं नहीं जाता था, या दरवाज़ा बंद था? अरे बेटा, दरवाज़ा तो आज अंतर का खुल गया।"

"तब आप क्यों नहीं जाते थे?"

"कैसे जाया जाय? ये कवच और कुंडल उतरवाने के बाद

मेरे दिल पर कितना भारी बोझा हो गया है कि इसकी तुझे क्या खबर हो। दूसरे का सारा जीवन माँग लेकर चल निकलना कितना कठिन होजाता है यह अगर अनुभव करना हो तो मेरे दिल के अंदर प्रवेश करके देख कि दैत्यों को मारनेवाला इन्द्र आज एक भी क़दम आगे नहीं बढ़ा सकता।"

"देवराज, मुझे शरमाइए मत।"

"कर्ण, एक बात पूछूँ?"

"ज़रूर पूछिए।"

"कवच और कुंडल उतारते समय तेरे मन में ज़रा भी संकोच हुआ था या नहीं?"

"संकोच कैसा? और संकोच हो भी तो आपको होना चाहिए। मुझे क्यों? मैंने तो सूर्यनारायण को तभी कह दिया था कि इन्द्र जैसे देवता ब्राह्मण का रूप धारण कर मेरे घर मांगने आवें यह तो मेरा अहोभाग्य होगा।"

"कर्ण, तेरे ये वचन सुनता हूँ तो मेरे सारे शरीर में एक जलन-सी होती है। तुझे ऐसा नहीं लगा कि इन कवच और कुंडलों के चले जाने से फिर तू अर्जुन के सामने टिक नहीं सकेगा? इस विचार से भी तूने इनकार नहीं किया?"

"यह समझ लीजिए कि अर्जुन से तो मैंने आज ही लड़ाई लड़ ली और अर्जुन की उसमें हार हुई है। जहाँ देवराज इन्द्र को अर्जुन को विजय दिलाने के लिए मेरे जैसों से कवच और कुंडलों की भीख मांगनी पड़े यह अर्जुन का पराजय नहीं तो

और क्या है ? भले ही फिर दृश्य संग्राम में अर्जुन का शरीर मेरे बजाय ज्यादा टिके। आप सुख पूर्वक पधारिए। अर्जुन से कहिएगा कि 'यह तेरे लिए विजय ले आया हूँ। अब कर्ण का देह अभेद्य नहीं रहा इसलिए तेरे बाण उसपर अपना काम करेंगे।'"

"कर्ण, मेरी एक बात सुनेगा ?"

"आज्ञा कीजिए।"

"आज्ञा-वाज्ञा तो जाने दे। मुझ से तू कुछ माँग।"

"बस मैं तो आपके आशीर्वाद चाहता हूँ।"

"नहीं, इसके अलावा और कुछ माँग।"

"आपके पाससे और कुछ माँगने की इच्छा नहीं होती।"

"लेकिन जबतक तू मांगेगा नहीं मुझसे यहाँ से जाया नहीं जायगा। न जाने कौन मुझे यहाँ रोक रहा है। मुझसे एक क़दम भी आगे नहीं बढ़ा जाता। मेरे दिल में न जाने क्या हो रहा है। तू कुछ माँग।"

"अगर ऐसा हो तो आप जो देना चाहें वह दे दीजिए।"

"नहीं यों नहीं। तू खुद माँग तो ही मुझे शान्ति मिलेगी।"

"तो सूर्यनारायण ने जो सुझाया वही माँगूँ? आपके पास जो अमोघशक्ति है वह मुझे दीजिए।"

"कर्ण, ठीक याद दिलाया। ले यह मेरी अमोघशक्ति। तूने उचित वस्तु माँगी है। इस अमोघशक्ति का ऐसा नियम है कि जिसपर इसका प्रयोग करेगा वह मनुष्य तो मरेगा ही। फिर वह

चाहे जो हो। लेकिन इसका प्रयोग तू एक वार ही कर सकेगा।" यह कहकर इन्द्र ने कर्ण को अमोघशक्ति दी।

"वेटा, अव इन कवच और कुण्डलों का भार कुछ हलका हुआ। अव मैं जासकूँगा। मैंने तेरे कवच और कुंडल उतारे यह विचार ही अभी तक मुझे चुभ रहा है। लेकिन मैं उसके वदले में कुछ दे सका हूँ इससे मुझे कुछ शांति मिली है। इस अमोघ-शक्ति का प्रयोग तू अर्जुन पर भी कर सकता है। किसी भी एक व्यक्ति पर और केवल एक वार इसका प्रयोग करना। तो अव जाता हूँ। परमात्मा तेरा कल्याण करें।"

इन्द्र कर्ण के कवच-कुंडल लेकर अपने लोक में गये और कर्ण अमोघशक्ति लेकर अपने महल में गया।

: ७ :

सैनापति कर्ण

दुर्योधन के खीमे में एक पलंग पर मद्रराज शल्य बैठे हुए थे। इनके सामने दुर्योधन बैठा हुआ था।

"महाराज दुर्योधन, मुझे क्यों याद किया ? क्या आज्ञा है ?"

"महाराज आप जानते हैं कि हमारी शक्ति दिन पर दिन कम होती जाती है। भीष्म बाणशैया पर पड़े और कल द्रोणाचार्य भी रणभूमि में काम आगये। ये दोनों जब तक थे तब तक मुझे कुछ देखना नहीं था। लेकिन आज तो अब सेनापति किसे बनाया जाय यही एक बड़ा प्रश्न सामने है।"

"महाराज, अपनी सेना में वीर योद्धाओं की कहाँ कमी है ?"

"तो मैं संक्षेप में आपको सब बता देता हूँ। इस समय रात के दो बजे हैं। और सुबह पांच बजे युद्ध शुरू करना है। कर्ण को सेनापति बनने का मैंने निश्चय किया है।"

"इस सूतपुत्र को ! आपको और कोई दूसरा क्षत्रिय नहीं मिला ?"

"मेरे सामने सूतपुत्र और क्षत्रियपुत्र का सवाल नहीं है। मुझे पाण्डवों को हराना है। इसलिए जो पाण्डवों के सामने टिक सके वही मेरा सेनापति। यह निश्चय तो हो चुका है।"

"जब निश्चय हो चुका है तो मुझसे फिर पूछना क्या ?"

"आपसे तो दूसरी बात पूछनी है।"

"क्या ?"

"कर्ण अर्जुन का प्रतिपक्षी है। कर्ण का विचार है कि वह कल अर्जुन को मारे। और पाण्डवों का सारा आधार अर्जुन पर है।"

"कर्ण तो कौआ है। उसे बस कांव-कांव करना ही आता है।"

"ज़रा सुनो तो। यों तो कर्ण और अर्जुन दोनों बराबर जैसे ही है।"

"तो फिर कल ही अर्जुन को मारकर अपना अभिषेक करालीजिए न ! फिर तो यह सारी झंझट मिट जायगी। भीष्म के बदले पहले कर्ण को ही सेनापति क्यों न बनाया ?"

"शल्य, ऐसे उतावले न बनो। हम दोनों का समय जाता है।"

"तो मुझे जो कहना हो जल्दी कह दीजिए।"

"कर्ण और अर्जुन दोनों बराबरी के योद्धा हैं पर अर्जुन के पास तो कृष्ण हैं।"

"तो कर्ण को भी एक कृष्ण लाकर देदो। कर्ण की जाति में तो कृष्ण ही कृष्ण तो भरे पड़े हैं।"

"शल्य, ऐसा न बोलें। कर्ण का कहना है कि जिस प्रकार श्रीकृष्ण अर्जुन का रथ हाँकते हैं उसी प्रकार अगर मद्रराज शल्य मेरा रथ हांकें तो कुंतीपुत्र कल ज़िन्दा नहीं बच सकता।"

"महाराज दुर्योधन, आपके सिवा किसी और ने अपने मुंह

से ये शब्द निकाले होते तो उसका सिर धड़ से जुदा कर देता। मैं मद्रदेश का राजा हूँ। मुझे लड़ना तो चाहिए था अपने भान्जे नकुल और सहदेव की तरफ़ से परंतु आपके साथ के संबंध की वजह से मैं इस तरफ़ आया हूँ। कर्ण जैसे सूतपुत्र का रथ मद्रराज शल्य हांके, यह कहते हुए आपको शरम नहीं आई।"

"शल्य, रोष न करें। इस समय ज्यादा वक्त नहीं है। कर्ण को आज सेनापति नहीं बनाते हैं तो कल ही हम लोग हारने वाले हैं। आप अगर सारथि न होंगे तो कर्ण सेनापति नहीं होगा। इसलिए आप मेरी यह बात स्वीकार करने की कृपा करें।"

"दुर्योधन, उस मिथ्याभिमानी, डरपोक दासिपुत्र का सारथि होना मेरे लिए मृत्यु के समान है।"

"परंतु यह कौरवराज दुर्योधन तुम्हारे पैरों पड़कर तुमसे यह मांगता है। आप इसे स्वीकार करो।"

"दुर्योधन, दुर्योधन, जिसके बदले सेनापति होने लायक मैं हूँ उसे आज आप सारथि बनने के लिए कहकर केवल अधर्म कर रहे हैं।"

"यह अधर्म तो मैं कर रहा हूँ न? पर दुर्योधन तो आपके पैरों पड़ रहा है। मेरे खातिर आप इसे स्वीकार कर लीजिए।"

"उस कौए के साथ मेरी नहीं पटेगी।"

"यह मैं देख लूंगा। आप स्वीकार करलो। फिर सब मैं ठीक कर लूँगा।"

"लेकिन दुर्योधन, मैं एक ही शर्त से यह बात स्वीकर कर

सकता हूँ और वह यह कि मैं जो कुछ कहूँ, कर्ण उसका जवाब न दे।"

"आपकी शर्त मंजूर है। मैं कर्ण को कह दूँगा। कहो अब तो सारथि होना स्वीकार है।"

"स्वीकार है।"

"मद्रराज, आपने मुझे आज अपना बड़ा आभारी बना लिया है। अब कल कुंती का बेटा ज़रूर रणभूमि में सोवेगा इसमें मुझे ज़रा भी शंका नहीं है। मैं कर्ण को अभी इत्तिला देता हूँ। आप भी सज्ज होकर आजायँ।"

दुर्योधन और शल्य एक दूसरे से विदा हुए।

× × ×

महाभारत के युद्ध का सोलहवाँ दिन था। एक सुन्दर रथ में बैठकर कर्ण पाण्डवों की सेना का संहार कर रहा था। कृपाचार्य, अश्वत्थामा आदि कर्ण की रक्षा कर रहे थे।

"शल्य, रथ को ठीक अर्जुन के सामने लो। आज शाम तक तो अर्जुन का नाश करना ही चाहिए।"

"दासी पुत्र, बकवास क्यों करता है? कौए ने कभी हंस को मारा है? कहाँ तू सूतपुत्र और कहाँ पृथापुत्र अर्जुन? आजतक तूने अपने मुँह बहुत बड़ाई की है। आज यहाँ बड़ाई हाँकने से काम नहीं चलेगा।" शल्य ने रथ हाँकते-हाँकते कहा।

कर्ण ढीला पड़गया।

× × ×

"शल्य, रथ को इस तरफ़ लाओ तो ?"

"उस तरफ़ तो आगे भीम खड़ा है।"

"कौन भीम है ? लाओ तो इसीको झपाटे में ले लूँ।"

"राधा के लड़के, अरे अभी कल ही तो अकेले घटोत्कच ने सारी कौरव सेना में हाहाकार मचा दिया था, यह भूल गया है। तुझे भी उस समय मुश्किल पड़गई थी और अंत में अमोघशक्ति का उपयोग करके उसका संहार करना पड़ा था। यह भूल गया क्या ? उसी घटोत्कच का बाप यह भीम है। भीम के साथ लड़ने का इतना शौक़ था तो जब उसने दुःशासन की छाती का ख़ून पिया तब उसके सामने आना था न ?"

कर्ण फिर ढीला पड़ा।

× × ×

"अर्जुन ! कहाँ है अर्जुन !!" महाराज युधिष्ठिर हांफते-हांफते आपहुँचे।

"अर्जुन आरहा है महाराज युधिष्ठिर।" श्रीकृष्ण ने कहा।

"क्यों महाराज; मुझे क्यों याद किया ?" अर्जुन ने पूछा।

"मुझे यह लड़ाई नहीं लड़नी। मैं पहले ही कहता था कि मत लड़ो। परंतु तुम और भीम नहीं माने।"

"पर महाराज; हुआ क्या ? यह तो कहिए। ज़रा शांत होइए। बात क्या है ?"

"यह मैं मरते-मरते बचा हूँ। कर्ण के झपट्टे से बचना कितना मुश्किल होता है, यह आज मुझे मालूम पड़ता है। तेरा

रथ तो श्रीकृष्ण हाँकते हैं। अपने बैठे-बैठे मौज से लड़ता रहता है। भीम की मर्ज़ी जिधर होती है उधर वह कूदता रहता है। सहना तो सब मुझे पड़ता है न ? मुझे यह लड़ाई अब नहीं लड़ना। ऐसा राजपाट मेरे लिए तो हराम है।"

"महाराज युधिष्ठिर, आप ज़रा शांत होइए। आप ज्यादा बोलोगे तो अर्जुन को जोश चढ़ेगा। और व्यर्थ ही आपस में क्लेश होगा। आप सुखपूर्वक अंदर तंबू में पधारिए। फिर कर्ण क्या करता है यह अर्जुन देख लेगा।" धीर गंभीर स्वर में श्रीकृष्ण बोले।

"यह भी तो आप बोलते हो। अर्जुन तो बोलता ही नहीं है। मैंने शुरू में मना किया था कि मुझे लड़ाई नहीं करनी है। पर दो में से कोई भी नहीं माना। और बीच में द्रौपदी और पानी चढ़ाती रहती थीं।"

"महाराज, आप शांत होइए और तम्बू में जाइए।" श्री कृष्ण ने सारथि को रथ तम्बू में लेजाने की सूचना की।

× × × ×

अग्रसेन नामका एक सर्प था। बरसों पहले जब अर्जुन ने खाण्डव वन जलाया था तब उस वन में से अग्रसेन बड़ी मुसीबत से अपने बाल बच्चों को लेकर भाग गया था। और पाताल में जाकर रहा था। महाभारत युद्ध शुरू होने की बात जब अग्रसेन ने सुनी तो उसका पुराना वैर जगा और उस वैर का बदला लेने के लिए वह कुरुक्षेत्र में भटकने लगा।

कर्ण और अर्जुन दोनों आमने-सामने होकर लड़ रहे थे। दोनों कुशल लड़वैये थे। सारथि भी दोनों के कुशल थे। और फिर सारथि के काम में तो शल्य श्रीकृष्ण से दो क़दम आगे ही रहते थे। रथ के घोड़ों को इधर उधर फिराकर, अनेक शस्त्रास्त्रों को आज़मा कर और एक दूसरे का वध करने की आशा मन में रखकर कुन्ती के दोनों पुत्र संग्राम में शोभित हो रहे थे।

कर्ण ने धनुष पर सर्पाकार का एक वाण चढ़ाया। अश्वसेन कर्ण के रथ के पास ही फुंकार मारता हुआ भटक रहा था। सर्पाकार वाण देखकर वह तुरन्त ही उल्लास में आ गया। और कर्ण की निगाह जाय न जाय इतने में तो उसने अपने शरीर को वाण के ऊपर वरावर जमा लिया। केवल शल्य यह जानते थे।

कर्ण अपनी छाती तानकर सीधा हो गया। वाण धनुष पर चढ़ा हुआ था। प्रत्यंचा खींचने की ही देरी थी। कर्ण के मन में यह था कि अगर अर्जुन के ठीक कपाल में यह तीर लगा तो यह एक ही वाण अर्जुन का अन्त कर देगा।

"शल्य, सावधान हो जाओ देखना यह एक ही वाण अर्जुन का प्राण ले लेगा।"

"कुत्ते ही ऐसी वात वोला करते हैं। लेकिन कर्ण, देख अगर तुझे अर्जुन के प्राण लेना ही हो तो उसके कपाल का निशाना साधने के वदले गले का निशाना साध।"

"मद्रराज, कर्ण ने एक वार निशाना साधा सो साधा; फिर

ध्रुव भले ही फिर जाय लेकिन कर्ण का निशाना नहीं बदल सकता।"

बराबर सीधे होकर कर्ण ने बाण छोड़ा। सामने अर्जुन का रथ था। और अग्रसेन अपने सारे जीवन का वैर अपनी डाढ़ों में इकट्ठा करके कर्ण के बाण के साथ चिपटा हुआ था। उसके मन में एक ही बात थी कि कब बाण छूटे और कब अर्जुन को डसूँ।

लेकिन अर्जुन के सारथी श्रीकृष्ण ने उस सर्प को देख लिया। खाण्डव वन के समय के उसके वैर को उन्होंने परख लिया और एक ही क्षण में रथ के घोड़ों को घुटनों के बल इस तरह बिठा दिया कि सारा रथ नीचे झुक गया और कर्ण का बाण और उस बाण पर बैठा सर्प अर्जुन के कपाल के बदले उसके मुकुट को लेकर दूर जा गिरा। कर्ण का निशाना खाली गया।

× × × ×

"कर्ण, कर्ण!"

रथ पर से कर्ण ने पीछे देखा—"कौन है तू?"

"यह मैं अग्रसेन सर्प।"

"क्यों मुझसे क्या काम है?"

"तुम अर्जुन को मारना चाहते हो न?"

"यह तो सब कोई जानता है। लेकिन उससे तुम्हें क्या?"

"मैं भी अर्जुन का कट्टर दुश्मन हूँ। इसीलिए यहाँ आया हूँ। मुझे तुम अपने बाण पर एक बार फिर चढ़ने दो। फिर तो इस

वाण से अर्जुन मरा हुआ ही समझना। पहली वार तुमसे भूल हुई इससे निशाना चूक गया अब मैं दूसरी वार चढ़ने आया हूँ।"

"पहली वार तुम थे ? तुम वाण पर कैसे चढ़ गये थे ? मुझे तो ख़बर ही नहीं पड़ी। शल्य, तुमको ख़बर थी ?"

"मुझे ख़बर थी इसीसे तो मैंने कहा था कि कपाल का निशाना साधने के बदले कण्ठ का निशाना साधो। लेकिन कर्ण का अभिमान कम थोड़े ही है।"

"शल्य, लेकिन इसके लिए मुझे ज़रा भी अफ़सोस नहीं है। भाई अश्वसेन, तुझे वाण पर चढ़ाकर मैं अर्जुन को जीतना नहीं चाहता। ऐसे अधर्म से अर्जुन को जीतने की कर्ण की ज़रा भी इच्छा नहीं है।"

"कर्ण, विचार लो। मेरे जैसा सर्प आकर तुमसे विनती करता है। उसका अनादर करोगे तो वाद में पछताना पड़ेगा।"

"इसकी चिंता नहीं। यह सब मैं देख लूँगा।"

कर्ण का रथ आगे बढ़ गया और अश्वसेन अपना वैर-भाव लेकर वापस पाताल लोक में चला गया।

: ८ :

कर्ण का पतन

"शल्य, यह रथ का पहिया ज़मीन में धंसा जा रहा है। इसे ज़रा बाहर निकालो तो।"

"यह काम मेरा नहीं है।"

"ठीक है, जब पृथ्वी खुद ही पहिये को पकड़ने लगे तो उसे मेरे बिना निकाले भी कौन ?"

कर्ण रथ से नीचे उतरा और पहिया ज़मीन में से निकालकर और ठीक करके फिर रथ में बैठ गया। इतने में पहिया फिर धंस गया।

"शल्य, मैं नीचे उतरता हूँ।"

कर्ण फिर नीचे उतरा और पहिया हाथ में लिया। सामने से अर्जुन के बाण तो बरस ही रहे थे।

"अर्जुन," श्रीकृष्ण ने कहा—"तू अपना हमला जारी रख। एक क्षण भी मत गँवाना।"

पहिये को हाथ से उठाकर ठीक करते-करते कर्ण बोला—"पृथा के पुत्र अर्जुन, मेरे रथ का पहिया पृथ्वी में धंस रहा है। मैं उसको जबतक निकालकर ठीक न करलूँ तब तक ज़रा ठहर जा। मैं रथ के नीचे खड़ा-खड़ा पहिया ज़मीन में से निकाल रहा

हूँ और तू रथ में बैठा-बैठा बाण बरसा रहा है; यह धर्म-युद्ध नहीं है।"

यह सुनकर श्रीकृष्ण गरज उठे—

"कर्ण, धर्म-युद्ध की तेरी यह वकालत सुनकर मुझे हंसी आती है। अपने सारे जीवन में तूने धर्म का आचरण किया भी है? पाण्डवों को लाक्षागृह में जला डालने की सलाह देते समय तुम्हारा धर्म-विचार कहाँ चला गया था? कौरवों की सभा में जब द्रौपदी खींचकर लाई गई तब 'पाण्डवों को छोड़कर अब तू दूसरा पति खोजले' ऐसी सलाह देनेवाले कर्ण का धर्म कहाँ गया था? पाण्डवों के वनवास के दिनों में उनको हैरान करने की युक्तियाँ खोजते समय कर्ण का धर्म कहाँ चला गया था? और अभी कल ही खिले हुए फूल के समान कोमल बालक अभिमन्यु को अकेले पाकर छः-छः बड़े अतिरथियों ने हमला करके मारा था उस समय कर्ण का धर्म कहाँ गया था? अर्जुन, झूठा धर्म-भीरु न बन। इस कर्ण का वध कर।"

और इधर कर्ण पहिया ठीक करके रथ में बैठा कि पहिया फिर जैसे का वैसा हो गया। और उधर से अर्जुन के बाण तो आ ही रहे थे। वह थोड़ी देर रथ में बैठा रहा। रोज़ चन्दन और धूपादि से जिसकी पूजा किया करता था वह ब्रह्मास्त्र कर्ण ने निकाला। लेकिन उसको चढ़ाने की क्रिया आज भूल गया था। हाथ में अस्त्र लेकर वह नीचे उतरा और फिर पहिये को ठीक किया।

"अर्जुन, ज़रा तो ठहर। क्षत्रिय-धर्म का विचार तो कर।"

कर्ण पहिये के पास जाकर दिङ्मूढ़ सा खड़ा रहा। एक हाथ में रथ का पहिया और दूसरे हाथ में खाली अस्त्र। सारा शरीर बिंध गया था। उसकी आँखों में अंधेरा छाने लगा। उसकी आँखों के सामने परशुराम और उनका आश्रम आया। मृत्यु पास आती दिखाई दी। सारा मैदान शून्य जैसा दिखाई देने लगा।

"शल्य, शल्य!"

"क्यों कर्ण, क्या है?"

"महाराज दुर्योधन कहीं दिखाई देते हैं?"

"दिखाई तो नहीं देते। क्यों कुछ काम है?"

"मैं तो यह चला। जिस पर इतना विश्वास रखकर उन्होंने यह महाभारत शुरू किया वह कर्ण अब चला। महाराज को मेरे अन्तिम नमस्कार कहना। दुर्योधन की मैत्री का मैं कुछ भी बदला न चुका सका इसके लिए मुझे वह क्षमा करें।"

"और कुछ कहना है?" शल्य ने पूछा।

"हाँ, एक बात कहनी है। आज इस समय जब मृत्यु मेरे सम्मुख आकर खड़ी है तब मुझे यह स्पष्ट दिखाई देता है कि इस युद्ध से शान्ति की आशा रखना व्यर्थ है। मैं अपने सामने इन योगेश्वर श्रीकृष्ण को देखता हूँ। उन्हींके हाथ में यह सारी बाज़ी है। भीष्म जब कहते थे तब मैं उनका मज़ाक उड़ाता था। दुर्योधन से कहना कि यह पृथ्वी किसीकी नहीं है। न उनकी

और न युधिष्ठिर की। मैं आज मर रहा हूँ; दुर्योधन कल मरेगा, परसों युधिष्ठिर की बारी है। यह सारी अठारह अक्षौहिणी सेना खिलौनों के पुतलों के समान ज़मीन पर सो जायगी। काल को तो यही अच्छा लगता है। इसे कोई नहीं रोक सका और न रोक सकता है। श्रीकृष्ण, मैं तुम्हें साष्टांग नमन करता हूँ। अर्जुन, अपने बाण छोड़ेगा। वीरों के भाग्य में ही तेरे हाथों मरना होता है।"

उसके एक हाथ में रथ का पहिया और एक हाथ में परशुराम की विद्या का खाली अस्त्र था; सूर्य का पुत्र, राधा का पुत्र, दुर्योधन का परम मित्र, कर्ण पृथ्वी पर सोया और तुरन्त ही सूर्यनारायण ने पृथ्वी पर अन्धकार फैला दिया।

: ९ :

निवापाञ्जलि

महाभारत खतम हो गया। अठारह अक्षौहिणी सेना का खातमा हो गया। लाखों स्त्रियाँ विधवा हो गईं। लाखों बालक पितृहीन हो गये। खून की नदियों की गिनती ही नहीं थी। सारे कौरव पृथ्वी पर सो गये। पीछे रहे सिर्फ पाँच पाण्डव, श्रीकृष्ण, धृतराष्ट्र गांधारी और कुन्ती।

युद्ध के अन्त में मरे हुए तमाम बन्धुओं को अर्घ्य प्रदान करने के लिए युधिष्ठिर जमना के किनारे गये। कुन्ती साथ में

थी। युधिष्ठिर अपने सारे कुल के वीरों के नाम याद कर-करके जल की अञ्जलि देते जाते थे।

"युधिष्ठिर, सबको अञ्जलि दे दी?"

"हाँ माँ, सबको दे दी।"

"फिर भी एक अञ्जलि रह गई।"

"नाम याद दिलाओ तो याद आवे।"

"कर्ण को।"

"कर्ण को? कर्ण तो सूतपुत्र। वह तो राधा का लड़का है।"

"नहीं बेटा, कर्ण तो कुंती का पुत्र।"

"माँ, तुम यह क्या कहती हो?"

"मैं ठीक कहती हूँ। जैसे अर्जुन मेरा वैसे कर्ण भी मेरा।"

"कुंती, कुंती, तुमने सर्वनाश कर दिया। कर्ण मेरा बड़ा भाई है यह पहले से ही तुमने बता दिया होता तो आज यह दिन न आया होता। उसे मैं अपना बड़ा भाई मानता। हम सब उसकी आज्ञा मानते। कुंती, कुंती, तुमने बहुत बुरा किया।"

"युधिष्ठिर, शोक मत कर। जो होना था सो होगया। विधाता को यही पसंद था। कर्ण को अञ्जलि दे दे और चल। ये सब कौरव स्त्रियाँ विलाप करती हुई आरही हैं।"

युधिष्ठिर ने कर्ण को अञ्जलि दी।

पांचाली

बदला ! बदला !!

"वहाँ बगीचे में यह कौन घूम रहा है ?" आश्रम के बारामदे में से मुनि ने पुकारा।

"महाराज ! यह तो मैं द्रुपद हूं। हवा में आज कुछ गरमी मालूम होती है। इससे नींद नहीं आरही, थी सो यहाँ चला आया।"

"बेटा, यहाँ आओ। इस पौस महीने की कड़कड़ाती सरदी में तुझे गरमी लगती है। यह गरमी हवा में नहीं है; वह तेरे दिमाग़ में है। लेकिन राजन, तुम इस प्रकार बदले और वैर के ही विचार कबतक करते रहोगे ?"

"महाराज, क्या करूँ ? मेरा कोई वस नहीं चलता। कल मैं तालाब पर पानी लेने गया था तो वहाँ मैंने सिंह और हरिनों को साथ-साथ खेल करते हुए देखा तब आपके कहे हुए वचन याद आये। आप अहिंसा की जो बातें कहते हैं वे मैंने वहाँ अपनी आँखों से सच होती देखीं……"

"तो मेरी बातें तेरी समझ में पूरी तरह आगई न ?"

"नहीं महाराज, ये सब बातें अपनी आँखों से देख चुकने के बाद भी मेरे मन में से बदले के विचार शान्त नहीं होते हैं।

आप जिस समय द्रोण से प्रेम करने की बातें कहते हैं, उस समय मुझे ऐसा लगता है मानों मेरे कलेजे में कोई भाले से छेद कर रहा है। लेकिन आपके प्रभाव के आगे मैं अपनेको दबा लेता हूँ, इससे कुछ बोल नहीं सकता।"

"द्रुपद, तो अब तेरे लिए मेरे पास कोई दूसरा रास्ता नहीं है। तू यहांसे चलाजा और दूसरा गुरु खोजले।"

"महाराज कृपा करके ऐसा न कहें। आपकी अगाध सामर्थ्य जानकर ही तो मैं आपके पास आया हूँ। अब मैं दूसरा गुरु खोजने कहाँ जाऊँगा? अगर मैं आपको प्रसन्न नहीं कर सका तो यहीं आश्रम में ही अपने प्राण छोड़ दूंगा। लेकिन यह बात आप निश्चित समझना कि शांति और प्रेम के विचार लेकर द्रुपद पांचाल के सिंहासन पर वापस नहीं जानेवाला है।"

"बेटा द्रुपद, तू मूर्ख है।"

"अगर मूर्ख न होता तो पांचाल राज्य छोड़कर आपके चरणों में क्यों आता? मैं जब वहांसे रवाना हुआ तब मेरी रानी भी मुझे मूर्ख ही कहना चाहती थी। लेकिन चाहे जो हो, मेरे मन में एक ही विचार इस समय है; और वह है, जिस प्रकार होसके द्रोण से बदला लेना।"

"तेरे पिता पृषत् और द्रोण के पिता भारद्वाज दोनों बड़े मित्र थे। और फिर द्रोण तो तेरा गुरुपुत्र। तुम दोनों एक ही मुनि के आश्रम में पढ़े। द्रोण के पिता ने तुम्हें विद्या दी। उस द्रोण से तू बदला लेगा?"

"इसीसे बदला लूँगा। और वह भी ऐसा कि जबतक इसे मार न सकूँ तबतक मुझे शांति न मिलेगी।"

"तो चटपट मार डाल न, जिससे शांति मिले।"

"यही तो सारी बात है। वह ब्राह्मण आज कौरवों का गुरु बन बैठा है न! महाराज, जब वह बात याद करता हूँ तो मेरे सारे ज्ञानतंतु उत्तेजित हो उठते हैं और मैं फिर होश में नहीं रहता। वह उठाईगिरा पांचाल के राजा के पास मैत्री की इच्छा से आता है और पांचाल देश का मालिक अगर इनकार कर देता है तो वह अपनी प्रतिष्ठा के खातिर फिर पांचालराज से बदला लेता है। यह तो केवल नामर्द ही सहन कर सकता है। पाण्डव और कौरवों के हाथों हुए अपने पराजय को मैं सहन नहीं कर सकता। महाराज, मुझे शांत करने के बदले आप उत्साह दिलाइए, धीरज दिलाइए। आप अपने सामर्थ्य से मेरी मदद करने की कृपा करें तो ऐसे-ऐसे सौ द्रोणों को मैं बताऊँ कि पांचाल का मालिक क्या कर सकता है। भगवन आप मेरी सहायता करो।"

"मैं तो बहुत ही तेरी मदद करना चाहता हूँ, लेकिन तुझे मेरी सहायता की ज़रूरत ही कहां है?"

"महाराज, मुझे तो ज़रूरत है। उस दिन ग्रीष्म की भर दुपहरी में भटकता-भटकता यहाँ आया तब आप ही ने तो मुझे आश्रय दिया था। आपके यहांके इस शांत और अहिंसक वातावरण में भी मैं वैर और बदले की बातें करता रहता हूँ फिर भी आपने मुझे अपने यहाँ टिका रखा है। नहीं तो क्या मैं यह नहीं जानता

कि आपके इस आश्रम में लताओं और फूलों के पेड़ों पर से कोई फूल तक नहीं तोड़ता। महाराज, आपकी मुझपर जो इतनी कृपा है इसीसे तो मैं यहाँ पड़ा हुआ हूं। प्रभो, मुझे रास्ता बताइए, यही मैं आपसे चाहता हूँ।"

"राजन, तेरी सेवाओं को देखते हुए तो जो तू चाहता है वही देना चाहिए। तेरे आने के बहुत दिन बाद तक मैं तुझको पहचान नहीं सका। पांचाल देश का स्वामी मेरा मल-मूत्र उठावे, मेरे पैर दबावे, बीमारी में दिन-रात एक करके मेरी सेवा करे, आश्रम के पशुओं की रखवाली करे, उनको चराने को जाय, और आश्रम के और लोगों के धक्के खाय फिर भी अपना चित्त शांत रख सके, इसके लिए तो द्रुपद तुझे शाबासी देनी चाहिए।"

"महाराज, ऐसी झूठमूठ की शाबासी किस काम की? अगर आप सचमुच मुझपर प्रसन्न हुए हों तो............।"

"बोल-बोल रुकता क्यों है?"

"तो द्रोण का सिर उतारनेवाला एक पुत्र मुझे दीजिए।"

"उपयाज क्या अपनी झोली में छोकरे भर रखता है, कि कोई शिष्य माँगे तो तुरंत उसके सामने फेंक दे?"

"महाराज, मेरा मज़ाक न उड़ाइए। मैं जानता हूँ इसीलिए कहता हूँ। आप मुझसे ऐसा यज्ञ कराइए कि जिससे मुझे एक ऐसा पुत्र हो। मैं स्वयं तो अब ऐसी स्थिति में नहीं रहा कि द्रोण का वध कर सकूँ। लेकिन फिर भी उसे मारने का विचार नहीं छोड़ सकता इसलिए यह माँगता हूँ।"

"बेटा, माँगनेवाले तो बहुत-सी चीज़ें माँगते हैं, लेकिन मुझसे ऐसी चीज़ें थोड़े ही दी जा सकती हैं। दुनिया के वैर-भाव के वातावरण से छुटकारा पाने के लिए तो मैं यहाँ जङ्गल में आया हूँ। और आकर भी मैं अगर दुनिया के वैर-भाव की वृद्धि किया करूँ तो यह मुझे और मेरे इस वेष को शोभा नहीं देता। बेटा, इस तरह का यज्ञ कराना मैं जानता ज़रूर हूँ; मुझमें ऐसा यज्ञ कराने की शक्ति भी है, लेकिन मैं जानता हूँ कि आज बरसों से मैंने अपने जीवन की दिशा बदली है इसलिए मैं अब ऐसे यज्ञ नहीं कराऊँगा।"

"महाराज !"

"महाराज-महाराज नहीं। सुन। तू तो कल का यहाँ आया है। पूर्वाश्रम में मैं कैसा था यह तू नहीं जानता। वह कथा बहुत लम्बी है। आज तो वह सारी दुहराता नहीं हूँ। कभी तेरी इच्छा हो तो सामने के ताक में कुछ ताड़पत्र रक्खे हैं उनको पढ़ लेना तो समझ जायगा।"

"उसके बाद महाराज,........."

"ठहर; लेकिन वह जीवन मुझे मृत्यु के समान लगा और फिर मैंने उधर से मुँह मोड़ लिया। एक दिन मैं स्वयं ही हिंसा में विश्वास करता था, लेकिन अब तो बरसों हुए मैंने उसका त्याग कर दिया है और यह मानने लगा हूँ कि जब सारी दुनिया उसका त्याग कर देगी तभी लोगों को सुख और शांति मिलेगी।"

"लेकिन महाराज, मेरे लिए कोई रास्ता निकालिए न ?"

"तेरे लिए भी यही रास्ता है। तू पांचाल का राजा क्यों है? मनुष्य केवल साढ़े तीन हाथ की भूमि का मालिक है। इससे जितनी ज्यादा थी उसे द्रोण ले गया तो भले ही ले गया। उसके पास अगर इससे भी ज्यादा होगी तो और कोई दूसरा लेजायगा। तेरी साढ़े तीन हाथ की ज़मीन का उपयोग करने के लिए अगर कोई तुझे इनकार करे तो उस दिन मेरे पास आजाना। मेरे इस आश्रम में से तुझे उतनी ज़मीन तेरे लिए निकाल दूँगा।"

"महाराज, आप जो कहते हैं वह बुद्धि से समझ में तो आता है और ऐसा-ऐसा अगर बार-बार सुनता रहूँ तो शायद फिर द्रोण से बदला भी न ले सकूँ इसलिए जान-बूझ कर मैं अपने कान बन्द कर लेता हूँ। अब मैं आपसे अन्तिम बार पूछ लेता हूँ कि आप मुझसे ऐसा यज्ञ करावेंगे या नहीं?"

"हरगिज़ नहीं।"

"दूसरा कोई मार्ग बतावेंगे?"

"दूसरा गुरु खोजले।"

"कोई ऐसा दूसरा गुरु है?"

"ऐसे गुरु तो ढेरों पड़े हैं। मेरे बड़े भाई याज ही हैं। सामर्थ्य में तो मैं उनके आगे कुछ भी नहीं हूँ। हम जब पढ़ते थे तो हम सबमें गुरुजी उन्हें पहला नंबर देते थे।"

"वह मुझे यज्ञ करावेंगे?"

"हाँ, ज़रूर करावेंगे। वह स्वयं हिंसा में श्रद्धा रखते हैं। हिंसा-प्रधान यज्ञों से ही वह वेदादि की सार्थकता सिद्ध करते हैं।

और मेरे जैसों की अहिंसा को वह एक पागल का प्रलाप मानते हैं।"

"तो मैं उनके पास जाऊँ ? और आप अपनी ओर से मेरे लिए उनको कोई संदेसा देने की कृपा करेंगे ?"

"ऐसे संदेसे तो तेरे ही हाथ में हैं। दक्षिणा खूब देना। जैसी मेरी सेवा तूने की है वैसी सेवा से वह खुश होनेवाले नहीं हैं। उन्हें तो नगदनारायण चाहिएं। जितना गुड़ डालोगे उतना ही मीठा होगा।"

"तो तो कोई चिंता नहीं। महाराज, अब मैं आपसे विदा चाहता हूं। आशीर्वाद दीजिए कि मेरे मन का मनोरथ सिद्ध हो। और फिर मैं अपना अन्त समय यहीं बिताऊँ।"

"ऐसे कामों में आशीर्वाद तो सबको अपनी अंतरात्मा की तरफ़ से ही मिलते हैं। तू सुखपूर्वक जा। तूने मेरी जो सेवा की है उसका मैं स्थूल रूप में कोई बदला नहीं चुका सका। हम दुबारा फिर न मिलें यही ठीक होगा। बदला लेनेवालों का अन्तकाल मेरे जैसों के आश्रम में होने का सुना नहीं गया। जा, तू अच्छी तरह द्रोण से बदला ले। तेरा पुत्र द्रोण को मारे और द्रोण का पुत्र तेरे पुत्र को मारे और इसके पुत्र फिर उसके पुत्र को मारें इस प्रकार यह मारकाट की परम्परा खड़ी करके तुम लोगों को जो करना हो करो। इसमें तेरा दोष नहीं है। यह मैं देख रहा हूँ कि आज जगत् में वैर-भाव की लहरें उठ रही हैं। आनेवाले पांच-पचीस वर्षों में, यह बदले और वैर का ज्वालामुखी फट पड़ेगा और उस

समय फिर वह किसीके दावे दब नहीं सकेगा। लेकिन काल को यही पसन्द है। इसलिए इसके सामने किसीका उपाय काम नहीं देता।"

"महाराज, आपकी आज्ञा लेता हूँ। आपके आश्रम में रहकर मैंने जो-जो अपराध किये हों उनको क्षमा कीजिएगा।"

"मेरे भाई जैसा यज्ञ करावें वैसा यज्ञ करना; द्रोण का सिर उतारनेवाला पुत्र प्राप्त करना; उसके बाद तुझे शांति कैसी मीठी लगती है यह संसार में प्रकट करना। जाओ द्रुपद, जाओ। पांचाल के स्वामी जाओ। भगवान् काल ने इस संसार में जिन चक्रों को घूमने के लिए प्रेरित किया है उसके सामने तेरी हस्ती ही क्या है? जा, भगवान् तुझे अच्छी मति दें।

"प्रभो, जाता हूँ—आपका आशीर्वाद चाहता हूँ।"

"आशीर्वाद तो ईश्वर से माँग।"

द्रुपद आश्रम के दरवाजे की तरफ़ गया और उपयाज मुनि अपने ध्यान करने के कमरे में गये।

पूर्व दिशा में धीरे-धीरे ललाई छा रही थी।

: २ :

पांचाली

द्रुपद याज मुनि के आश्रम में गया। याजमुनि ज़मीन पर पड़े-पड़े एक सड़ा-सा आम चूस रहे थे। इतने में दरवाज़े पर उनकी नज़र पड़ी।

"क्यों भाई, किससे काम है?" आम चूसते हुए याजमुनि ने पूछा।

"मैं इस आश्रम के मुनि की तलाश में हूं।"

"क्या काम है? मैं ही याज हूं।"

उपयाज मुनि के आश्रम से नाराज़ ही निकले हुए द्रुपद को विश्वास न हुआ।

"आपही याज मुनि हैं?" द्रुपद ने पक्की बात जानने की गरज़ से पूछा।

"मुझे काम क्या है, बताइए न! याज-उपयाज के फेर में क्यों पड़ता है? कोई यज्ञ वगैरा कराना है?" याज ने सीधा सवाल किया।

"जी हां।"

याजमुनि ने आम की गुठली और छिलका फेंक दिया और पूछने लगे—"कैसा यज्ञ कराना है?"

"ऐसा यज्ञ कराना है जिससे मुझे मेरे शत्रु का सिर उतारने वाला पुत्र मिले।

"ओह ! इसमें कौन बड़ी बात है ? वेद में तो ऐसे बहुत-से यज्ञों का विधान हैं।"

"तो आप मुझसे ऐसा यज्ञ करायेंगे ?

"पर तेरी जात कौन है ? कौन-से शत्रु का सिर उतारनेवाला पुत्र चाहिए आदि की मुझे पूरी खबर तो होनी चाहिए न ? काम के महत्व के अनुसार दक्षिणा भी मिलेगी या नहीं, यह भी तो मुझे देखना होगा ?"

"मैं हूँ पांचाल का राजा, पृषत् का पुत्र द्रुपद। द्रोण ने अपने शिष्यों द्वारा मुझे हराकर गंगा और यमुना के उत्तर का पांचाल का भाग मुझसे छीन लिया है। मेरे पास सिर्फ दक्षिण भाग ही रहगया है।"

"द्रोण तो भारद्वाज का पुत्र है न ?"

"जी हाँ। द्रोण से बदला लेने के लिए मुझे एक समर्थ पुत्र की अभिलाषा है।"

"यह तो समझा। लेकिन यह काम कोई साधारण नहीं है। द्रोण समर्थ मनुष्य है। उसका सिर उतारनेवाला पैदा करना ज़रा मुश्किल ही है। लेकिन कोई बात नहीं।"

"महाराज, दक्षिणा की चिन्ता न कीजिएगा; मैं आपको एक लाख गाय के जितना धन दूँगा।"

"बस, काफ़ी है राजन्। हम ब्राह्मणों को धन की कोई इच्छा नहीं है। यह तो काम ज़रा टेढ़ा है न, इसलिए दक्षिणा का विचार करना पड़ा।"

"तो यज्ञ कब शुरू करेंगे ?"

"मैं तो तुम्हारे साथ आज ही चल रहा हूँ। पहुँचकर दूसरे ही दिन यज्ञ शुरू कर देंगे। जब काम करना ही है तो फिर देर क्यों ? शुभस्य शीघ्रम्।"

× × ×

द्रुपद की राजधानी में श्रौतविधि से यज्ञ की तैयारियाँ हो रही थीं। सप्तसमुद्रों का जल आया था; अनेक कुओं का पानी मंगाया गया; गंगा और गोमती का पानी आया; और तिल्ली, जौ, उड़द, चावल, नारियल वगैरा होम की अन्य वस्तुओं का तो कोई पार ही न था। इसी काम के लिए एक खास मंडप बनाया गया था। मंडप के बीचोंबीच एक यज्ञ वेदी बनाई गई थी।

याजमुनि ने यज्ञ शुरू किया। रोज़ सुबह यजमान और यजमान-पत्नी आकर वेदी का पूजन करते; अपने दाहिने हाथ की तर्जनी अंगुली का खून निकालकर उससे याजमुनि को तिलक करते और प्रार्थना करके याचना करते कि "द्रोण का सिर उतारनेवाला पुत्र हमें दीजिए।" याजमुनि आँखें मूंदकर दोनों हाथ उनके सिर पर रखते और उनके मनोरथ पूर्ण हों ऐसी भावना करते।

इस प्रकार यज्ञ का काम पूरे ज़ोर शोर से चल रहा था। ब्राह्मणों की वेदध्वनि सारी राजधानी में गूंजने लगी। यज्ञ का धुंआँ सारे नगर पर बिछने लगा। प्रतिदिन रात को गाँव की हवा में एक प्रकार की बेचैनी-सी बढ़ने लगती। और पांचाल के

ब्राह्मणों के मन न जाने क्यों कुछ अस्वस्थ-से होने लगे। लेकिन पांचाल के राजमहल में तो आनंद था। पांचाल के योद्धा लोग एक नये सरदार की प्राप्ति की आशा में हर्ष के मारे पागल हो रहे थे। उनकी तलवारें म्यान से बाहर निकलने को आतुर रहतीं।

इतने में यज्ञ की पूर्णाहुति का समय आया। यज्ञ में हवन करने का नारियल ब्राह्मणों ने तैयार रक्खा था। नियम के अनुसार महाराज द्रुपद सुबह के समय में वहां उपस्थित थे। राज्य-अधिकारी भी इस प्रसंग पर उपस्थित थे। हवन-कुण्ड में अग्नि के सामने टपकता हुआ लाल नारियल लेकर याज अंतिम आहुति देने को खड़े हुए।

"राजन, याजमान-पत्नी कहां हैं? जल्दी बुलाओ।" याज ने जल्दी की।

"प्रधानजी, जाइए रानी को बुला लाइए।" द्रुपद ने कहा।

"लेकिन जल्दी ही लाइए। समय हो गया है।" याज ने कहा।

प्रधानजी जल्दी से गये और वापस आये।

"क्यों रानी कहां हैं? तुम्हें उनको बुलाने को भेजा था न?" याज ने चिल्लाकर पूछा।

"महाराज, महारानीजी कहती हैं कि उन्होंने अभी स्नान नहीं किया है। और उनके शरीर का अंगराग वैसे का वैसा ही है।"

"स्नान नहीं किया है उससे क्या? कोई हर्ज़ नहीं है। जाओ, जल्दी बुला लाओ।"

प्रधान फिर बुलाने गये और फिर वैसे ही वापस आगये।

"क्यों रानीजी क्या करती हैं? सारे जीवन की मेहनत अब धूल में मिलानी है क्या? आतीं क्यों नहीं?" द्रुपद ने अधीर होकर कहा।

"महाराज, रानीजी कहती हैं कि उन्होंने अभीतक दतौन भी नहीं किया है। इस तरह अशुद्ध रीति से कैसे आवें?" प्रधान ने विनयपूर्वक कहा।

"छिः छिः! रानीजी को ऐसा किसने सिखा दिया? और फिर ऐसे यज्ञों में तो अशुद्धि खास तौर से फलप्रद होती है। इसलिए जाओ, रानी जी को जैसी हालत में वह हों वैसे ही बुला लाओ और कहो कि आहुति का समय हो गया है। पल-भर की भी देर न करें। काल भगवान् के लिए यही मुहूर्त ठीक है, इसलिए देर न करो।"

प्रधान जी शीघ्र ही गये और पांचाल की रानी को लेकर वापस आये। रानी द्रुपद के पास हाथ जोड़कर खड़ी हो गईं।

याज ने शुद्ध मंत्रोच्चार से पूर्णाहुति का नारियल होम दिया और तुरंत ही यज्ञ की वेदी में से घोड़े पर बैठा हुआ एक पुरुष बाहर आया। उसके कान में कुंडल थे, शरीर पर कवच था और हाथ में शस्त्र थे।

"द्रुपद, ले यह तेरा पुत्र" याज बोले।

घोड़े पर बैठे हुए उस पुरुष ने यज्ञशाला के बाहर घोड़े को खूब घुमाया और वापस यज्ञ-वेदी के पास आया। यज्ञ की इस

प्रकार की तात्कालिक सिद्धि से द्रुपद तो एकदम चकित हो गया, और याजमुनि की प्रशंसा करने लगा।

"महाराज द्रुपद, यह तुम्हारा तेजस्वी पुत्र है। इसका नाम धृष्टद्युम्न। यह द्रोण का सिर उतारेगा इसमें ज़रा भी शंका मत करना।"

द्रुपद ने याजमुनि को नमस्कार किया और घोड़े पर से उतर कर अपने पास आकर खड़े धृष्टद्युम्न के शरीर पर हाथ फेर कर कहा—"बेटा, तुमने हमें भाग्यशाली बना दिया है।"

"लेकिन द्रुपद, इस वेदी में से तेरे लिए एक पुत्री भी तैयार है।" याजमुनि ने कहा।

"आपका कहना मैं बराबर नहीं समझा।"

"तुझे द्रोण का वध करनेवाला पुत्र तो मिला; लेकिन उसकी तैयारी करनेवाला भी तो कोई चाहिए न ?"

"जी।"

"इसके लिए मैं तुझे एक पुत्री देता हूँ।"

इतना कहते ही याज मुनि ने दूसरा नारियल यज्ञ में होम दिया। और एक सुन्दर स्त्री यज्ञ की वेदी में से बाहर निकली और रानी के पास जाकर खड़ी होगई।

"द्रुपद, इसका नाम कृष्णा रखना। इसके शरीर का रंग श्याम है इसलिए।"

"मुनि महाराज, आपने मुझपर खास कृपा करके यह पुत्री दी है।" रानी ने कहा।

"यह पुत्री ऐसे समय में पैदा होनी ही चाहिए थी। तुम और मैं सब इन दोनों के पैदा होने में केवल निमित मात्र हैं। राजन, एक बात बताता हूँ ?"

"देखो अपने दिल की एक बात कह देता हूँ। यह धृष्टद्युम्न और यह कृष्णा तुम्हारा नाम अमर कर देंगे। कुछ समय बाद इस देश में एक दारुण युद्ध होनेवाला है, उसके चिह्न मुझे दिखाई देने लगे हैं। नहीं तो ऐसे यज्ञ कराने का न तो मुझे सूझ सकता है और न गुरु-पुत्र से वैर लेने का तुम्हें सूझ सकता है। लेकिन राजन, न जाने कैसे मैं, तुम और ये सब लोग किसी बड़ी शक्ति के हाथ में एक यंत्र की तरह पड़े हैं और न जाने किस उद्देश्य के लिए उखाड़-पछाड़ किया करते हैं। राजन, यज्ञ की यह अग्नि लाखों मनुष्यों के रक्त की भूखी है ऐसा मुझे दिखाई देता है।" कहते-कहते याज अचानक अटक गये।

"महाराज जैसा आप कहते हैं वैसा हो भी सकता है। लेकिन यह तो जगत् का क्रम है। इसलिए हम क्षत्रियों को इसका ज़रा भी दुःख नहीं होता।" द्रुपद ने धीरज से उत्तर दिया।

"मुनि महाराज, मैं एक वस्तु चाहती हूँ।" रानी ने कहा।

"बोलिए रानीजी!"

"ये दोनों पुत्र और पुत्री मुझे अपनी माँ समझें ऐसी आप कृपा करें और इस लड़की को तो मैं अपनेसे कभी जुदा नहीं करूँगी।" रानी ने कहा।

"तथास्तु। लेकिन इस लड़की के भाल पर से ऐसा मालूम होता है कि यह किसी सम्राट् की रानी होगी।

"यह तो मेरे बड़े अहोभाग्य हैं।" द्रुपद ने गर्व से कहा।

"द्रुपद, अब यह यज्ञ पूर्ण हुआ इसलिए अब मैं तो जाता हूँ। तेरा और तेरे पुत्रों का कल्याण हो।"

इतना कहकर याजमुनि चले गये। धृष्टद्युम्न और कृष्णा को लेकर राजा और रानी महल में गये और उसके बाद पांचाल के योद्धाओं ने बड़ाभारी जयघोष किया।

: ३ :

पांच भाइयों की पत्नी

"मां, ये सब राजा-महाराजा पिताजी को जो धमका रहे हैं इससे मैं बिलकुल नहीं डरती; और ये सब क्षत्रिय लोग अपने पराक्रम से मुझे वरनेवाले उस महापुरुष को जो तकलीफ़ दे रहे हैं इससे भी मेरा दिल बिलकुल नहीं दुखता; लेकिन तुम्हारी आंखों में से यह जो धारा बहरही है वह मुझसे नहीं देखी जाती।" अपनी मां की आँखों के आंसू पोंछती हुई द्रौपदी बोली।

"बेटी कृष्णा, तू चाहे जितनी बड़ी होगई हो और समझदार भी होगई हो, लेकिन मेरे सामने तो बालक ही है। लड़की जब छोटी होती है तो उसका लाड़-प्यार करना और उसकी शादी के बारे में इधर-उधर की बातें करना बहुत सरल होता है; लेकिन जब वह बड़ी हो जाती है तब उसके योग्य वर खोजने की चिन्ता में दिल कैसे जलता रहता है इसका तुझे अनुभव नहीं हो सकता।" रानी ने अपने आंसू पोंछते हुए कहा।

"लेकिन मां, पिताजी और भैया की प्रतिज्ञा के अनुसार मेरा स्वयंवर नहीं हुआ क्या?" पांचाली ने पूछा।

"तेरे पिता की तो बात क्या कहूँ? उनकी तो मन-की-मन में ही रह गई। उन्होंने तो तेरे लिए पाण्डुपुत्र अर्जुन की कल्पना

"मैंने छिपे-छिपे यह देखा कि सबसे छोटे दोनों भाई गांव में से भिक्षा लेकर आये और उन्होंने अपनी माँ के सामने सब रक्खा। माँ ने बहन से कहा कि 'इस भिक्षा में से एक भाग देवताओं के लिए निकाल लो। फिर सबके दो भाग करके एक भाग इस बिचले लड़के को देदो और बाक़ी आधे में से हम सबके हिस्से करलो'।"

"बिचले को आधा हिस्सा क्यों?"

"इस बिचले का आहार और उसकी ताक़त बहुत है इसलिए।" द्रौपदी ने कहा।

"लेकिन मेरी बेटी को सुलाया कहाँ था?"

"उस कुम्हार के ढोर बाँधने की जो जगह थी उसमें सबसे छोटे भाई ने चटाई बिछाकर सबके बिछौने बिछाये। उनकी माँ उन सबके सिर की तरफ़ और बहन उनके पैताने सोई।" धृष्टद्युम्न ने कहा।

"मेरी बेटी! ज़मीन पर तुझे नींद कैसे आई होगी? तेरे पिता को अगर यह मालूम हो जाय तो उन सबको महल में ले आवें।"

"मुझे तो ऐसे समाचार मिले हैं कि भोजन करने और रहने को आज वे सब यहीं आनेवाले हैं। देखो यह पिताजी का आदमी आया, इसीसे पूछें।"

"क्यों क्या ख़बर लाये हो?"

"रानीजी, आपके लिए एक समाचार लाया हूँ; लेकिन कहने को मुँह नहीं खुलता।"

"ऐसे क्या समाचार हैं ?"

"हमारी यह बेटी कृष्णा उन पाँचों भाइयों से शादी करे—ऐसा उन लोगों का विचार है।"

"तेरी जीभ कटकर गिर जाय! छुआ! कहते शर्म नहीं आती। मेरी बेटी के पाँच पति ?"

"हाँ, मैंने तो यही सुना है।"

"मैंने ऐसे कोई अपनी लड़की बेची नहीं है। ये लोग ब्राह्मण नहीं दीखते। कोई जंगली आदमी होंगे। नहीं तो भला ऐसी बात बोलते। एक आदमी के कई स्त्रियाँ तो होते सुना है। लेकिन एक स्त्री के कई पति तो होते नहीं सुना। चूल्हे में जाय तुम्हारा यह स्वयंवर और ये मुये सब ब्राह्मण। दुनिया से धर्म उठ गया मालूम होता है।"

"माँ, इतनी उतावली मत होओ।"

"उतावली न होऊँ तो करूँ क्या ? तू तो एक और पति तेरे पाँच। इतने महीनों पेट में रखा तो क्या घर में नहीं रख सकूँगी।"

"माँ, इतनी उतावली मत होओ।"

"ले, नहीं होती उतावली! लेकिन पाँच पति तो वेश्या के होते हैं। शास्त्र में ऐसा कहाँ लिखा है ?"

"लेकिन एक पुरुष और एक स्त्री का विवाह यह शायद प्रेम की ईर्ष्या से उत्पन्न हुआ नियम है। एक स्त्री को अनेक पति और एक पुरुष को अनेक स्त्रियाँ यह देश और काल की परि-

"माँ, तुम बहुत उतावली हो जाती हो। मानों हम सबको तो कोई अक़ल ही नहीं है। पिताजी को ज़रा शान्ति से बैठकर बात तो करने दो।" धृष्टद्युम्न ने गरम होकर कहा।

"ले सुन; मैं तेरी चिन्ता मिटाने की दवा ले आया हूँ।"

"क्या लाये ? कहिए।"

"जिस वीर पुरुष ने भरी सभा में धनुष खींचकर निशान पर बाण मारा था वह ब्राह्मण नहीं किन्तु क्षत्रिय है।"

"एं! आप क्या कहते हैं? क्या सचमुच क्षत्रिय है?"

"हाँ, वह क्षत्रिय है, इतना ही नहीं परन्तु वह स्वयं अर्जुन है और ये पाँच मर्द पाँचों पांडव हैं और उनकी माँ कुन्ती स्वयं है।"

"ओ! बेटी कृष्णा, अंत में तेरी ही बात सच निकली। अब मेरा कलेजा ठंडा हुआ बेटी। तो अन्त में तू क्षत्रिय के पास ही गई।" रानी मानों कृतकृत्य होगई हो। उसकी आंखों में हर्ष के आँसू आगये।

"तो अब तुम्हारी चिंता दूर होगई न ? या कुछ बाकी रहा ?" द्रुपद ने पूछा।

"अब और कौन-सी चिन्ता होती ? लेकिन यह लड़का कहता है कि ये पाँचो मर्द कृष्णा से शादी करेंगे। क्या यह ठीक है ?" रानी ने पूछा।

"हाँ, यह बात तो ठीक है। मैंने भी जब यह सुना तो मेरे दिल में चोट लगी; लेकिन जब स्वयं व्यास भगवान ने

मुझे यह बताया कि यह तो उनका कुल-धर्म है तो मैंने इसे स्वीकार कर लिया। और महाराज युधिष्ठर स्वयं सत्यनिष्ठ हैं; इसलिए वह जो करेंगे वह अधर्म हो ही नहीं सकता ऐसी मेरी निष्ठा है।" द्रुपद ने कहा।

"लेकिन एक की जगह पांच पति ?"

"हां, पांच पति। यह उन लोगों का कुल व्यवहार है इसलिए मैं इसमें बाधा नहीं डालना चाहता।" द्रुपद ने कहा।

"लेकिन लोक में तो मेरी लड़की की निन्दा होगी न ?"

"मां, लेकिन यह तो मुझे सम्हालना है न ? एक पतिवाली स्त्रियां कितनी संयमवाली होती हैं यह जाकर पहले देखलो। मैं पांच भाइयों से शादी करूंगी फिर भी संयम का पालन करना तो मेरा और उनका प्रश्न है। प्रपन्न राजा के कुल में मैं पैदा हुई हूँ; द्रुपद जैसे पराक्रमी मेरे पिता हैं, धृष्टद्युम्न जैसे भाई की मैं बहन हूँ और पाण्डवों की पत्नी बनूँगी, तब भी मेरे पतिव्रत में तुमको इतनी शंका क्यों आती है ?"

"शंका नहीं है, लेकिन लोग क्या कहेंगे ?"

"ऐसी लोक-निन्दा का कहां-कहां ख़याल रखेंगे ? फिर व्यास भगवान् का विचार करें, या कुन्ती का विचार करें, या जिन पाण्डुओं के पुत्रों के लिए दिन-रात तू सोचा करती थी उनका विचार करें ? किसका विचार करें ? इस विचार को छोड़ दे और आनंद से इस प्रसंग का स्वागत कर।" द्रुपद ने कहा।

गुस्सा आता है कि उस रांड की चोटी पकड़कर वहीं-का-वहीं पछाड़ डालूं।" दुःशासन ने कहा।

"पछाड़ देख न ? बोलना आसान है, करना नहीं। करने में अभी देर लगेगी।" शकुनि ने कहा।

"जब पछाड़ूंगा तो एक घड़ी की भी देर न लगेगी।"

"अब तुम बन्द करो अपनी रामायण, दुःशासन! मामा, अब तो पाण्डवों की कुछ-न-कुछ पक्की व्यवस्था करनी चाहिए। इसलिए कोई और रास्ता बताइए।" दुर्योधन ने कहा।

"दुनिया में रास्तों की कमी नहीं है। ईश्वर ने मनुष्य जैसा प्राणी बनाया और उसकी ज़रा-सी खोपड़ी में ऐसी कोई चीज़ रख दी है कि वहां किसी भी काम के लिए रास्ते तो मिलते ही रहते हैं। सिर्फ उन रास्तों पर चलनेवालों की ही दुनिया में कमी है।" शकुनि ने कहा।

"मामा ऐसे मत कहिए। आपके बताये रास्ते पर मैं कब नहीं चला ? आपके कहने से ही तो मैंने भीमसेन को ज़हर दिया और गंगा में धकेल दिया था। आपके कहने से ही तो उनको लाख के महल में टिकाया और आग लगाई। लेकिन न जाने कैसे वे अन्त में बच निकलते हैं।" दुर्योधन ने कहा।

"यही बात है न ?"

"संयोग तो ऐसा हुआ था कि वह द्रुपद की छोकरी हमारे कर्ण को मिलती। लेकिन अन्तिम घड़ी में उस छोकरी ने सब गुड़ गोबर कर दिया।" दुर्योधन ने कहा।

"मामा, इस बार तो कोई ऐसी युक्ति खोज निकालो कि जिससे ये पाण्डव और वह छोकरी सब एकबार चीं बोल जायँ और द्रौपदी को भी मालूम हो जाय कि पाण्डवों से उसने शादी की थी।" कर्ण ने कहा।

"युक्तियाँ तो तैयार पड़ी हैं। कोई उनपर अमल करनेवाला चाहिए।"

"यह रहा अमल करनेवाला।" छाती तानकर दुर्योधन सामने आया।

"तुमसे यह नहीं हो सकता।"

"होगा क्यों नहीं?"

"धृतराष्ट्र के सामने तेरी कहाँ चलती है? वहां तो पाण्डवों ने अपने स्थायी वकील नियुक्त कर रक्खे हैं। इसलिए तुम्हारे हाथ-पैर पछाड़ने व्यर्थ हैं।" शकुनि ने कहा।

"विदुर को वहांसे किसी तरह हटाया जाय।"

"राजन, मुझे तो लगता है कि ये युक्ति-प्रयुक्तियाँ एक ओर रखकर पाण्डवों से दो-दो हाथ करलें। एक ही दिन में सब तय हो जायगा।" कर्ण बोला।

"लड़ना हो तो भीमसेन से तो मैं निपट लूँगा।" दुःशासन ने कहा।

"भाई, यों उतावले मत बनो। लड़ने से हमारा काम नहीं बनने का। मामा को बोलने दो।" दुर्योधन ने कहा।

"तो सुनो! देखो युधिष्ठिर को जुआ खेलने का बड़ा शौक़ है। सच है न?" शकुनि ने कहना शुरू किया।

"बहुत ज़्यादा। सत्य के बाद दूसरा नम्बर जुए का ही है।" दुर्योधन ने कहा।

"तो हम उससे जुआ खेलें।" शकुनि ने कहा।

"लेकिन वह तो इनकार करेंगे। वह जानते हैं कि जुआ बहुत बुरी चीज़ है।" कर्ण ने कहा।

"यह सब ठीक है, लेकिन फिर भी शौक़ बहुत बुरा होता है। इसलिए वह इनकार नहीं करेंगे। हमें धृतराष्ट्र से उन्हें कहलाना पड़ेगा। बस।" शकुनि ने कहा।

"इतना तो पिताजी से कहला देंगे, और पिताजी की आज्ञा का युधिष्ठिर विरोध भी नहीं करेंगे ऐसी मुझे आशा है।" दुर्योधन ने कहा।

"लेकिन इस जुए से होगा क्या?" कर्ण ने पूछा।

"मामा को तो कह लेने दो। कहो मामा, फिर आगे?" दुर्योधन बीच में बोला।

"युधिष्ठिर के एकबार जुआ खेलना स्वीकार कर लेने पर फिर वह और मैं बाज़ी लगाकर खेलेंगे।" शकुनि ने कहा।

"मामा, यह तो बहुत ही ठीक होगा।" दुर्योधन तो ख़ुश होगया।

"मामा को बड़े दूर की सूझती है। न जाने इनके दिमाग़ में क्या-क्या भरा है।" दुःशासन बोला।

"फिर खेल-खेल में मैं युधिष्ठिर से उसका राजपाट, धन-दौलत, हीरे, जवाहरात, भाई वग़ैरा सब जीत लूँगा।" शकुनि ने अपनी योजना सामने रक्खी।

"यह तो बहुत ही बढ़िया रहेगा।"

"लेकिन इस सारी बात का आधार धृतराष्ट्र के ऊपर है। अभी तो ऐसा करो कि किसी तरह धृतराष्ट्र युधिष्ठिर को खेलने को बुलावें।" शकुनि ने कहा।

"लेकिन वहाँ विदुर जो बैठा है। वह इस गाड़ी को पटरी पर नहीं बैठने देगा।" कर्ण ने कहा।

"कोई ऐसी युक्ति खोज निकालो कि धृतराष्ट्र इसी विदुर को ही बुलाने भेजें।" शकुनि ने कहा।

"हाँ, यही ठीक है। आप लोग यह क्यों समझ लेते हैं कि पिताजी इस काम के लिए इनकार कर देंगे। मेरी उन्नति हो यह उन्हें क्या अच्छा नहीं लगता? जरूर लगता है। पर उन्हें ज़रा लोक लाज का भी ख़याल रखना पड़ता है; इससे लोग ऐसा समझ लेते हैं।" दुर्योधन ने कहा।

"लेकिन मानलो कि तुम्हारी कल्पना के अनुसार पाण्डव सब कुछ हार गये। मगर उसके बाद क्या होगा?" कर्ण ने पूछा।

"उसके बाद का विचार बाद में करेंगे। पहले से सब ठीक-ठीक नहीं हो सकता। ऐसे मामलों में भाग्य अपने क्या खेल खेलता है यह भी तो देखना होता है। जहाँतक मेरी नज़र दौड़ती है वहाँ-तक तो इस युक्ति से पाण्डव काफ़ी हैरान होंगे और द्रौपदी को भी काफ़ी मुसीबत उठानी पड़ेगी।" शकुनि ने कहा।

"मुझे यह मंजूर है।" दुर्योधन ने कहा।

"मुझे भी मंजूर है।" दुःशासन ने कहा।

"अपने को तो पहले लड़ाई मंजूर बाद में यह जुआ वगैरा।" कर्ण ने कहा।

"मामा, यह तो सबको मंजूर है।"

"तो तुम लोग किसी तरह युधिष्टिर को खेलने के लिए बुला लाओ। उसके बाद का सारा भार तुम्हारे मामा के ऊपर।" शकुनि ने कहा।

"मामा, इस समय का तीर तो बराबर है न ?" दुःशासन ने पूछा।

"लगता तो बराबर है। फिर कोई अनचिंती घटना होजाय और खेल बिगड़ जाय तो भगवान जाने। मेरी बुद्धि तो यही कहती है कि खेल में युधिष्टिर सब हार जावेंगे और दुर्योधन समुद्र-पर्यंत सारी पृथ्वी का स्वामी होगा।" शकुनि ने कहा।

"मैं राजा होऊँ या न होऊँ, इसकी मुझे चिन्ता नहीं है। मैं तो केवल यह चाहता हूँ कि इन पाण्डवों को अच्छा मज़ा मिले। कल सुबह द्रौपदी ने मेरा और मेरे वृद्ध पिता का जो मज़ाक उड़ाया वह मैं हरगिज़ सहन नहीं कर सकता। मामा, तुम्हारी इस युक्ति में इस द्रौपदी का ज़रूर खयाल रखना।" दुर्योधन ने कहा।

"खेल के समय मैं पास ही रहूँगा और अगर मामा को याद न रहेगा तो मैं याद दिला दूँगा।" दुःशासन ने कहा।

"मामा और भूल जाय ? जिस दिन मामा यह भूल जायगा उस दिन संसार में अंधेरा होजायगा। क्यों मामा, ठीक है न ?" दुर्योधन ने समाप्त किया।

: ५ :

वस्त्रहरण

"भारत के क्षत्रियो ! अब तुम्हारा काल आगया है।"

हस्तिनापुर के राजमहल में आदमियों की भीड़ जमी थी। एक तरफ़ भीष्म, द्रोण, कृप, विदुर वग़ैरा लोग चित्र में चित्रित जैसे सिंहासनों पर जड़वत् बैठे थे। एक ओर मंत्र-मूर्च्छित सर्पों के समान फुंकारते हुए पाण्डव नीचा सिर किये बैठे थे। और एक ओर दुर्योधन, कर्ण, शकुनि वग़ैरा मानों विश्वविजय करके आये हों इस प्रकार मूंछों पर ताव दे रहे थे। विशाल कमरे के बीचों-बीच द्यूत-पट के पास हाथीदांत के पांसे इस प्रकार चुपचाप पड़े थे मानों भरत-कुल का इतिहास लिख रहे हों। चारों ओर शांति थी, मानों सब निश्चेष्ट हों—सबके मुंह जैसे सिल गये हों। सबकी आंखें कमरे के दरवाज़े की ओर लगी हुई थीं।

इतने में एक शेरनी की दहाड़ सुनाई दी—

"भारत के क्षत्रियो ! अब तुम्हारा काल आगया है।"

भीष्म और द्रोण के कान खड़े हुए, दुर्योधन के कान खड़े हुए, भीम और अर्जुन के कान खड़े हुए, सारी सभा में एक कंपकंपी छागई।

गोली के लग जाने पर जैसे घायल शेरनी भागती है वैसे ही

द्रौपदी उस सभा-भवन में दाखिल हुई। उसके लम्बे बाल उसकी पीठ पर समुद्र की लहरों के समान लहरा रहे थे। अपनी कमर के कपड़े को नीचे सरकने से बचाने के लिए उसने उसे थाम रखा था। मुँह में उसके साँस रुकता नहीं था। उसकी आँखों में क्रोध और घबराहट थी।

द्रौपदी के पीछे दुःशासन दृढ़ता से पैर बढ़ाये आरहा था।

"भारत के क्षत्रियो! अब तुम्हारा काल आगया है। इस सभा में भीष्म और द्रोण बैठे हैं; इस सभा में प्रतापी पाण्डव बैठे हैं; फिर भी यह पापी दुःशासन निर्लज्ज होकर मेरी चोटी पकड़ सकता है और लात मार सकता है, इसीसे मैं कहती हूँ कि हे क्षत्रियो! अब तुम्हारा काल आगया है। मैं द्रुपद राजा की पुत्री; मैं धृष्टद्युम्न की बहन; मैं पाण्डवों की धर्मपत्नी; मैं भीष्म और धृतराष्ट्र की कुलवधू; अर्जुन जैसा पराक्रमी मेरी वेणी में फूल गूँथता है; जगत् के समस्त ब्राह्मणों ने मेरी इस चोटी पर अवभृथ का जल सिंचन किया, उन्हीं मेरे इन बालों को यह पापी दुःशासन छूता है और तुम सब क्षत्रिय बैठे-बैठे देख रहे हो इसीसे मुझे लगता है कि इस संसार से अब क्षत्रियत्व उठ गया। तभी तो…"

"अरे चल, चल, बड़ी आई क्षत्रियत्व वाली! आज से तू हमारी दासी है। जाओ, हमारे अंतःपुर में जाकर झाड़ू लगाओ। यहाँ व्यर्थ की बकवास मत करो।" दुःशासन ने हुक्म दिया।

"पांचाल की पुत्री तुम्हारी दासी? पाण्डु की कुलवधू

तुम्हारी दासी ? दुःशासन ज़रा ज़बान सम्हाल कर बोल। नहीं तो तेरी जीभ के टुकड़े-टुकड़े होजावेंगे।"

"ओह! देखो पाण्डु की कुलवधू! पाँच-पाँच तो खाविन्द हैं और ऊपर से बनती है कुलवधू! वेश्याओं के कभी नियत पति हुए हैं?" कर्ण ने उत्तर दिया। "जुए में युधिष्ठिर तुझे हार गये हैं। इसलिए अब तू दुर्योधन की दासी हुई है। 'मैं सूतपुत्र को नहीं वरूंगी' यह सब अब यहाँ नहीं चलेगा।" कर्ण ने कहा।

"दुर्योधन का जूठन खाकर पलनेवाले कौए बसकर। पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, पूज्य विदुर, मैं आपसे और सारी सभा से एक प्रश्न करना चाहती हूँ। धर्म को सामने रखकर उसका उत्तर दीजिएगा। महाराज युधिष्ठिर ने मुझे अपने खुद के हार जाने के बाद दांव पर रक्खा या पहले ?"

सारी सभा स्तब्ध होगई। कुरुकुल के सब धर्मशास्त्री विचार में पड़ गये। कौरवों के अंदर हलचल शुरू होगई। थोड़ी देर के बाद वृद्ध पितामह खड़े हुए और जवाब दिया—"बेटी द्रौपदी, तेरा प्रश्न बिलकुल वाजिब है। धर्म की गति अत्यंत सूक्ष्म है। युधिष्ठिर महाराज सत्यवादी हैं। तुझको उन्होंने दांव पर रक्खा यह बात सच है। लेकिन उनको ऐसा करने का अधिकार था या नहीं, यह कौन तय करे ?"

इतना कहकर भीष्म बैठ गये। दूर से कर्ण और शकुनि भीष्म की ओर देखकर मंद-मंद मुस्करा रहे थे।

इस ओर दुःशासन का धीरज खतम हो रहा था। सभा में

इस प्रकार आपस में यह गड़बड़ हो ही रही थी कि इतने में दुर्योधन का छोटा भाई विकर्ण खड़ा होकर बोलने लगा—

"यहाँ पर इकट्ठे हुए क्षत्रियो, सुनो! यह दुःशासन एक हज़ार हाथियों के बलवाला माना जाता है, लेकिन फिर भी द्रौपदी का ज़रा-सा कपड़ा नहीं खींच सका। यह आप देख रहे हैं। यह चाण्डाल चौकड़ी इसे चाहे जितना उत्साहित करे, लेकिन इसके अंतर का बल खत्म होगया है। इसका कारण आप नहीं जानते; लेकिन मैं तो जानता हूँ। द्रौपदी के पक्ष में सत्य है और उसी-की उसे गरमी है, उसी सत्य के बल पर इतनी बड़ी सभा के सामने वह खड़ी है। और उसके सामने देखने की भी कोई हिम्मत नहीं कर सकता है। दुर्योधन और दुःशासन मेरे बड़े भाई हैं। शकुनि मेरे मामा हैं। लेकिन फिर भी मैं कहता हूँ कि हमने पाण्डवों को कपट से जीता है। यह कपट की जीत हमें कभी हजम नहीं होगी। यह बात निश्चित है। अभी भी अगर कौरवों को इस पाप से बचना हो तो सब द्रौपदी से क्षमा माँगें, पाण्डवों को प्रसन्न करें और उनके पास से जो कुछ लिया है वह सब वापस करदें।"

इतना कहकर विकर्ण बैठ गया। यह सुनकर कर्ण से चुप न रहा गया। वह बोला—"देखो न, यह एक सत्य की पूँछ पैदा हुआ है। दुर्योधन! मुझे तो तुम्हारा यह भाई बिलकुल नादान मालूम होता है। अगर द्रौपदी के पक्ष में सत्य होता तो युधिष्ठिर हारते ही क्यों?"

"नादान तो है ही। कौन मानता है इसके कहने को ?" दुर्योधन ने कहा।

"आपके लिए मैं नादान हो सकता हूँ। लेकिन आप सब यहां बैठे हैं और द्रौपदी का बाल भी बांका नहीं कर सके, यही मेरे कहने को सिद्ध करता है कि द्रौपदी के पक्ष में सत्य है। अगर द्रौपदी चाहे तो आज वह सारी सभा और सारे संसार को जलाकर भस्म कर सकती है। लेकिन उसका आत्मबल लोककल्याण के लिए है, इसलिए वह आप सबको अपनी भूल समझने का मौक़ा देती है। इस मौक़े से फ़ायदा उठाओगे तो सबका भला होगा। नहीं तो सबका विनाश तो सामने है ही। अब भी समय है अपनी भूल को सुधारने का।" इतना कहकर विकर्ण चुप होगया।

विकर्ण ने मानों कुछ कहा ही नहीं, इस तरह उसकी उपेक्षा करते हुए दुर्योधन ने अपनी जांघ खोलकर द्रौपदी से कहा—"द्रौपदी, आ जा, तू तो मेरे पास यहां बैठने योग्य है।"

सारी सभा ने मारे शर्म के अपना सिर नीचा कर लिया। पाण्डवों के अन्तर में एक सागर लहरें मारने लगा; लेकिन क्या करते ? लेकिन भीम से नहीं रहा गया। उसने वहीं प्रतिज्ञा की कि "इस दुःशासन ने द्रौपदी की चोटी पकड़कर घसीटा है इसलिए युद्ध में दुःशासन को मारकर उसके ख़ून से द्रौपदी की चोटी न बांधूँ; और इस दुर्योधन ने निर्लज्ज होकर द्रौपदी को अपनी जांघ बताकर उसपर बैठने को कहा, सो अगर इसी जांघ को मैं अपनी गदा से चूर-चूर न करूँ तो मैं पण्डुपुत्र नहीं।"

इसी बीच अंधे राजा धृतराष्ट्र और गांधारी सभा में आये। इस द्यूत-सभा की और पाण्डवों के हारने की बात उनतक पहुँच गई थी। दिल में इसकी उन दोनों को कुछ खुशी भी हुई थी। लेकिन जब द्रौपदी का वस्त्र खींचने और उसके खींचते-खींचते दुःशासन घबड़ा गया और द्रौपदी अडग खड़ी रही यह बात सुनी तो वे भी घबरा गये।

यह बात सुनते ही गांधारी ने धृतराष्ट्र से कहा :—

"मैंने तो आपसे कभीका कह दिया था कि आपका यह दुर्योधन कुलांगार है। आप तो निर्बल हैं, इसीसे दुर्योधन का कहा करते रहते हैं। सच बात तो यह है कि आपको दुर्योधन की दुष्टता अच्छी लगती है। अभी भी अगर कुल की रक्षा करनी हो तो द्रौपदी को राज़ी करलो। नहीं तो अगर वह कोपेगी तो यहाँ हममें से कोई भी ज़िन्दा न रह सकेगा।"

जैसे ही धृतराष्ट्र और गांधारी सभा में आये, शकुनि तो पलायन कर गया और कर्ण एक कोने में दुबक गया।

धृतराष्ट्र बोले—"बेटी द्रौपदी, कहाँ हो तुम ? आओ मेरी गोदी में आओ।" द्रौपदी को अपनी गोदी में बिठलाकर धृतराष्ट्र ने उसकी चोटी ठीक की। उसकी पीठ पर हाथ फेरते-फेरते वह बोले—

"बेटी द्रौपदी शांत होओ। इन मूर्ख छोकरों ने तुझे बहुत दुःख दिया। इसके बदले में मैं तुझे एक वर देता हूँ। बेटी जो तेरी इच्छा हो वह माँगले और अपने क्रोध को शांत कर।"

द्रौपदी ने कहा—

"पूज्य काका, तो मैं यही वर मांगती हूँ कि महाराज युधिष्ठिर आपके पुत्रों के दास हुए हैं सो उनको दासत्व से मुक्त करें और जैसे पहले थे वैसे उनको स्वतंत्र करें।"

"तथास्तु।" धृतराष्ट्र ने कहा। "तेरी इस सुन्दर मांग से मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। इसलिए एक दूसरा वर और मांगले।" धृतराष्ट्र बोले।

"तो महाराज युधिष्ठिर के बाद अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेव भी उस दासत्व से मुक्त हों और द्यूत में महाराज युधिष्ठिर जो धन और राज्य हार गये हों वह उन्हें सारा वापस मिले।"

"तथास्तु।" धृतराष्ट्र ने कहा, "बेटी, बस जाओ और शांत होओ।" धृतराष्ट्र ने द्रौपदी का सिर सूंघा और पाण्डवों के साथ द्रौपदी को भली प्रकार विदा किया।

× × × × ×

लेकिन दुर्योधन से भला यह सहा जा सकता था? वह तो अपने हाथ मलने और धृतराष्ट्र को भला बुरा कहने लगा। कैसी बड़ी मिहनत से पाण्डवों को चंगुल में फांसा था! सारी मिहनत बेकार गई।

"मैंने तो पहले ही कहा था कि इस अंधे राजा को तुम्हें अपने कब्जे में रखना चाहिए।" शकुनि ने कहा।

"न जाने कौन जाकर उनको खबर दे आया। उस साले ने सारा खेल ही बिगाड़ दिया।" दुर्योधन बोला।

"लेकिन एक रास्ता है। महाराज धृतराष्ट्र कहते थे कि जुआ खेलना हो तो भले ही तुम लोग खेलो, लेकिन इस हद तक बात का बतंगड़ मत बनाया करो।" दुःशासन ने कहा।

"ऐसा कहा है क्या ? तब तो बहुत ठीक। चलो एक बार पाण्डवों को फिर खेलने को बुलावेंगे, और हार-जीत में बहुत ज्यादा बात नहीं रक्खेंगे।" शकुनि ने कहा।

"तो फिर इस खेल में क्या मज़ा आवेगा ?" दुःशासन ने कहा।

"जो हार जाय उसे बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास। इस अज्ञातवास में अगर कभी पहचान जायँ तो फिर बारह बरस का वनवास—यही इस बार खेल की शर्त रक्खेंगे।" शकुनि ने कहा।

"वनवास में क्या रक्खा है ? यह तो बिलकुल सरल बात है।" दुःशासन ने कहा।

"यह बात नहीं है। पाण्डवों के वनवास के दर्मियान हम लोग राज्य में ऐसे जम जायँगे कि उनके आने पर कहीं भी उनको ठिकाना न मिले। और बारह बरस जंगल में भटकने के बाद क्या वे जिन्दा वापस आनेवाले हैं ? तबतक तो उनका खात्मा हो जायगा।"

"मामा का हिसाब तो ठीक है। चलो तो फिर युधिष्ठिर को एकबार खेलने के लिए बुलावें।" दुर्योधन ने कहा।

"लेकिन मामा, देखना कहीं इसबार सब कौरवों को बारह

वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास न भोगना पड़े।" दुःशासन ने चुटकी ली।

"तो फिर शकुनि मामा कैसा ? मैं तो इन पांचों को वन में भेजूँगा और इनके साथ ही वह तेरी आँखों को चौंधिया देनेवाली पाँच पति की पत्नी को भी वल्कल पहनाऊंगा। बड़ी पांचाल की पुत्री आई है। देखता हूँ कैसे वल्कल नहीं पहनती है ?" शकुनि ने कहा।

"मामा, सारा आधार आपके ही ऊपर है इसलिए ज़रा ध्यान रखकर ही खेलना।" दुर्योधन ने कहा।

: ६ :

शठं प्रति.......?

"देवी पांचाली, क्या कर रही हो ?" पर्णकुटी के दरवाजे में घुसते हुए युधिष्ठिर ने पूछा।

"यह भीलनी थोड़ासा कोदों और धान देगई है, इसे साफ़ कर रही हूँ।" द्रौपदी ने जवाब दिया।

"लेकिन तुम्हारा मुंह सूज क्यों गया है ? कल नींद नहीं आई थी क्या ?" युधिष्ठिर ने पास आकर पूछा।

"नींद क्यों न आवेगी ? वल्कलों का यह राजसी पोशाक, पृथ्वीमाता की गोदी में सोना, सारी रात गीदड़ों का मीठा संगीत सुनना और बारह वर्ष अनायास ही लगातार मिलनेवाले इस सुख और ऐश्वर्य के कारण मन की असाधारण शांति : ऐसी नींद तो जब मैं कुंवारी थी तब पांचाल के राजमहलों में भी नहीं आती थी।" द्रौपदी ने कोदों को फटकते हुए कहा।

युधिष्ठिर पर्णकुटी के चबूतरे पर बैठ गये और गहरे विचार में पड़ गये।

"क्यों चुप क्यों होगये ?" द्रौपदी ने उनके सामने देखकर पूछा। "जहाँ आप देख रहे हो वहाँ कुत्ते का मल पड़ा है। कल नील गायों ने आकर इस पर्णकुटी के दरवाजों को तोड़ डाला है।

नकुल और सहदेव ने आपके लिए जो चबूतरा बनाया है वहाँ अब नेवले आराम करने लगे हैं। युधिष्ठिर महाराज, बोलते क्यों नहीं ? शरीर से तो आप स्वस्थ हैं न ?" द्रौपदी ने पूछा।

"हाँ।"

"धूप में से आने के कारण सिर तो नहीं दुखने लगा ? लो ज़रा यह पानी छींट लो।" द्रौपदी ने यह कहते हुए ठण्डे पानी से भरा एक मिट्टी का बर्तन युधिष्ठिर को दिया। लेकिन युधिष्ठिर उसे बराबर पकड़ न सके और वह गिरकर टूट गया।

"कोई बात नहीं। इतने दिन यह टिक गया इसीका मुझे आश्चर्य होरहा था। मैंने भीलनी से कहा था कि हमें क्यों दे रही है ? हमारे यहाँ यह टिकेगा नहीं। लेकिन वह न मानी। ख़ैर, ज़रा ठहरो। मैं यह वल्कल भिगोकर लाती हूं और आपके सिर पर रखती हूँ।"

"पांचाली, इसकी कोई ज़रूरत नहीं है। मेरा सिर दर्द नहीं करता है।" युधिष्ठिर ने कहा।

"तो फिर बोलते क्यों नहीं ?" द्रौपदी ने पूछा।

"क्या बोलूं ? तुम जैसी सुकोमल राजकुमारी को मेरे कारण इतना कष्ट उठाना पड़ता है, जब इसका विचार करता हूं तो मैं असमंजस में पड़ जाता हूं और आंखों के सामने अँधेरा छा जाता है।" युधिष्ठिर ने कहा।

"युधिष्ठिर, युधिष्ठिर, क्या सच कहते हो ? मेरी बात तो जाने दो। आपसे शादी हुई उसी दिन उस कुम्हार के यहाँ उसके ढोर

बाँधने के घर में जब तुम सबके पैताने सोई थी उसी दिन मेरे लिए तो मंगलाचरण हुआ था। बीच में दो दिन खपरैल की छत के नीचे सोने का सौभाग्य भी मिला था। न जाने वह किस पुण्य का प्रताप था। लेकिन मेरी तो बात ही नहीं है। पर इन भीम और अर्जुन के बारे में भी कभी विचार करते हो? इन माद्री माता के पुत्रों का भी विचार आपको आता है?" द्रौपदी को जोश चढ़ा।

"तुमको क्या लगता है?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"मुझे तो ऐसा लगता है कि आपको इन सबका कोई ख़याल नहीं है। ये भीम और अर्जुन जैसे भाई तो इन्द्र को भी मिलना दुर्लभ हैं। इन्हीं दोनों भाइयों के पराक्रम के कारण ही आपने राजसूय यज्ञ किया, और देशदेशांतर के राजाओं ने आपके चरणों में सिर नवांया। ऐसे भाइयों को आपके कारण अब वल्कल पहनना पड़ता है, जो अपने धनुष की टंकारमात्र से अक्षौहिणी सेना का नाश कर सकता है उस अर्जुन को एक सेर अनाज की खातिर जंगल छानना पड़ता है, वट जैसे बड़े-बड़े वृक्षों को अपने दोनों हाथों से पकड़कर उखाड़नेवाले भीमसेन को आपके सोने के लिए ज़मीन साफ़ करनी पड़ती है और घास छीलनी पड़ती है; अगर इन सबका आपको ज़रा भी विचार आता हो तो हमारी यह दशा नहीं हो सकती।" द्रौपदी की आंखों में क्रोध की लाली दिखाई देने लगी।

"देवी, देवी, तुम्हें पता नहीं है।"

"मुझे सब पता है। पांचाल की पुत्री और धृष्टद्युम्न की बहन एकदम मूर्ख नहीं है। यह नकुल और सहदेव जैसी जोड़ी सारे संसार में मिलना कठिन है। इन भाइयों के ललाट में राज-सिंहासन लिखा है, लेकिन न जाने क्यों आज ये इधर-उधर लेट-लोट कर अपनी रातें बिता लेते हैं और दिनभर जंगलों में भटकते रहते हैं।" द्रौपदी ने कहा।

"पांचाली, क्या तुम समझती हो कि मैं यह सब कुछ देखता ही नहीं हूँ?" युधिष्ठिर धीरेसे बोले, जैसे उनको एक टीस-सी उठी हो।

"तुम्हारी चमड़े की आँखें देखती होंगी, लेकिन हृदय की आँखें यह सब नहीं देख सकतीं। बुरा मत मानना; तुम्हींने मुझे बोलने को कहा है, इसीलिए बोलती हूँ। तुम्हें कहने का मुझे अधिकार है, इसीसे कहती हूँ। आज मेरा कलेजा मेरे हाथ में नहीं रहा इसीसे यह बोलती हूँ। अगर सचमुच आप यह सब देखते हैं तो अर्जुन और भीम से बराबर सुलह और शांति और क्षमा की बातें क्यों करते हैं। बोलिए?" द्रौपदी ने कहा।

"शांति और क्षमा ही तो सच्ची वस्तु है, ऐसी मेरी दृढ़ मान्यता है, इसीलिए यह कहता हूँ।" युधिष्ठिर ने उत्तर दिया।

"अभी भी शांति और क्षमा! अभी भी? कपट से हराकर हमारे ये हाल जिन्होंने किये उनको फिर क्षमा! इस जंगल में भी हमें सुख से नहीं रहने देनेवाले उस दुर्योधन को फिर क्षमा! महाराज युधिष्ठिर, यह कौन बोल रहा है?"

"युधिष्ठिर ही बोल रहा है। पांचाली के क्रोधित होने पर भी क्षमा की बातें सिवा युधिष्ठिर के और कर कौन सकता है?"

"और ऐसा निष्ठुर दूसरा और हो भी कौन सकता है? अपनी स्त्री को जो सरेआम बेच देता है ऐसा वीर पति और हो कौन सकता है? युधिष्ठिर, कौरवों ने ये वल्कल तो हमें पहना दिये, लेकिन अब फिर यहां आ-आकर हमें वे तकलीफ क्यों देते हैं?" द्रौपदी ने कहा।

"सांप और बिच्छू काटें नहीं तो और क्या करें? यह तो उनका स्वभाव ही है।"

"तो इन सांप और बिच्छुओं को मार क्यों नहीं डालते? इनको मारते हुए तुम्हारा कलेजा कांपता हो तो दूर हट जाइए। लेकिन आप तो इन भीम और अर्जुन को भी तो मारने से रोकते हैं!" द्रौपदी मानों वाक्‌युद्ध के लिए तैयार हो रही हो इस प्रकार बैठ गई।

"मुझे ऐसा लगता है कि उनको इस प्रकार मारने से हमें सुख नहीं मिलेगा। इसलिए मैं ऐसा कहता हूँ।" युधिष्ठिर ने शांति से जवाब दिया।

"तो किस प्रकार सुख प्राप्त करना चाहते हो?"

"उन्हें समझा-बुझाकर।"

"वे समझ जावेंगे, ऐसा आप मानते हैं?"

"अगर हम लोग सच्चे हृदय से समझावेंगे तो वे जरूर समझेंगे। और अगर नहीं समझेंगे तो काल को हमें जो करना होगा वह होगा।"

"तुम्हारी ये बातें मेरे गले नहीं उतरतीं। इतना-इतना सहने के बाद भी तुम क्यों इस बात को पकड़े बैठे हो यह मुझे समझ में नहीं आता। इसी जंगल में दुर्वासा मुनि और उनके हज़ारों शिष्यों को भेजकर दुर्योधन ने हमें शाप से मरवा डालने का यत्न किया था, वह प्रसंग याद नहीं आता? भगवान ने उस दिन हमारी लाज न रखी होती तो? इसी जंगल में दुर्योधन का बहनोई और सिंधुदेश का राजा जयद्रथ मुझपर क्रूर दृष्टि रखकर मुझे उठा लेगया था। यह आपको याद आता है? न जाने कौनसी बात है जिससे ये कौरव तो मुझसे मानों खार खाये बैठे हैं। और युधिष्टिर, युधिष्टिर, यह चोटी देखते हैं? भरी सभा में दुःशासन ने इसका अपमान किया था और मेरे पति केवल देखते रहे! यह याद आता है? वह दिन है कि आज का दिन है, मैंने चोटी नहीं बाँधी है। मेरे भीम जिस दिन उसके खून से मेरी यह वेणी बाँधेंगे उसी दिन की मैं तो राह देख रही हूँ। यह सब आपको याद है न?"

"यह याद है और इससे ज्यादा भी याद है।"

"तो फिर तुम्हारा खून खौल क्यों नहीं उठता? तुम्हारी आंखों में खून क्यों नहीं उतर आता?"

"यह सब याद है। इन सब बातों को याद करने से चित्त में दुःख भी होता है कि मेरे कारण तुम सबको दुःखी होना पड़ रहा है। लेकिन साथ ही साथ यह भी अनुभव करता हूँ इन सबका उपाय—सच्चा उपाय—युद्ध नहीं है।"

"तो क्या क्षमा है?"

"मुझे तो ऐसा ही लगता है।"

"ऐसी क्षमा तो कायर की ही हो सकती है! ऐसी क्षमा तो नामर्द की ही हो सकती है! ऐसी क्षमा उठाईगीरों की ही हो सकती है। शूरवीर क्षत्रियों में ऐसी क्षमा नहीं होती। अगर होती है तो वह सच्चा क्षत्रिय नहीं है।" द्रौपदी की आँखों में खून उतर आया।

"तुमको ऐसा लगता होगा।"

"एक बात पूछना चाहती हूँ। आपको अगर ऐसी क्षमा ही श्रेष्ठ और सच्चा उपाय मालूम होता हो तो फिर शस्त्रों का त्याग क्यों नहीं कर देते? अगर ऐसी क्षमा ही आपको धारण करनी हो तो क्षत्रियों के चिह्नरूप इन शस्त्रास्त्रों का त्याग कर दें; क्षमा के अवताररूप ऋषि-मुनियों का जीवन बिताना शुरू करें, और क्षमा की उपासना करके सुख और शान्ति प्राप्त करें। मैं तो ऐसी क्षमा में श्रद्धा नहीं रखती। भीम और अर्जुन का भी उसमें विश्वास नहीं है; नकुल और सहदेव का भी उसमें विश्वास नहीं है। इसलिए आप यहीं जंगल में अकेले बैठे-बैठे क्षमा की उपासना कीजिए और हमें अपने रास्ते जाने दीजिए। सब कौरवों को यमलोक पहुंचा देने के बाद हम भी फिर यहाँ उपासना करने आ-जावेंगे। और माता कुंती को भी ले आवेंगे।" द्रौपदी भभक उठी।

इतने में भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव मृगया से पर्णकुटी वापस आगये। द्रौपदी का मुंह लाल देखकर भीम ने पूछा—
"पांचाली, क्यों गुस्से हो रही हो?"

"महाराज युधिष्ठिर को और कुछ कह सुन कर दुखी तो नहीं किया न?" अर्जुन ने पूछा।

"प्रिय अर्जुन, आज तो मुझसे यह दोष हो गया है। मुझे क्षमा करो।" द्रौपदी कुछ नरम हुई और लज्जित भी।

"हम सब लोगों का यह निश्चय था न कि भाई साहब को किसी प्रकार व्यर्थ में दुःखी न करना चाहिए?" अर्जुन ने गंभीरता से कहा।

"नहीं, मुझे इसमें कोई दुःख नहीं हुआ। द्रौपदी को और तुम सबको मैंने अपनी मूर्खता से दुःख में ला पटका इसमें कोई शक नहीं है। इस दुःख के मारे तुम जो कुछ भी कह दोगे वह मुझे सहन ही करना चाहिए।" युधिष्ठिर ने शांति से कहा।

"अब तो हमारे दुःख का अंत नज़दीक आरहा है। ये बारह वर्ष तो बीत गये हैं। यह तेरहवां वर्ष भी इसी तरह बीत जायगा और हमारे दुःखों का अंत आजायगा।" अर्जुन ने कहा।

"क्यों सहदेव, तुम क्या समझते हो?"

"आसार तो ऐसे ज़रूर दिखाई देते हैं लेकिन सुख आज है या तेरहवें वर्ष के अंत में है यह तो दोनों सुख भोग लेने के बाद ही ठीक तरह से कहा जासकता है।" सहदेव ने जवाब दिया।

"मेरी तो एक ही बात है। ये बारह वर्ष जिस प्रकार बिताये हैं उसी प्रकार तेरहवां वर्ष भी बिता डालें। महाराज युधिष्ठिर की जो प्रतिज्ञा वह हम सबकी प्रतिज्ञा। लेकिन उसके बाद क्या?"

"उसके बाद तो मेरी यह गदा और अर्जुन का वह गांडीव! उसके बाद का प्रश्न ही नहीं रहता।" भीम ने कहा।

"मैं भी यही कहती हूँ कि उसके बाद युद्ध...युद्ध और युद्ध!" द्रौपदी ने कहा।

"मैं कहता हूँ कि उसके बाद जहांतक बन पड़े शांति-सुलह, और जहांतक होसके धीरज और इन सबसे काम न बने तो फिर अंतिम घड़ी में युद्ध तो है ही।" युधिष्ठिर ने कहा।

"तेरह वर्ष के बाद भी समझौता? किससे समझौता करेंगे? किसलिए समझौता करेंगे? कौन समझौता करेगा।" भीम से न रहा गया।

"अभी तो एक वर्ष की देरी है। एक वर्ष तो हमें अभी अज्ञातवास करना है। इस वर्ष के बाद क्या करेंगे यह अभीसे तय करना ठीक नहीं है। तेरहवां वर्ष पूरा हो जाने के बाद हमें क्या करना होगा इसके लिए हम स्वतंत्र हैं। समझौता करना होगा तो समझौता करेंगे और युद्ध करना होगा तो युद्ध करेंगे।" अर्जुन ने कहा।

"फिर तो पांचाली की इस चोटी से समझौता करना होगा! फिर तो मेरी यह गदा दुःशासन की छाती के साथ और दुर्योधन की जांघ के साथ समझौता करना चाहेगी।" भीम उबल रहा था।

"भाई भीमसेन, द्रौपदी, इस समय तो हम अब इस बात को यहीं खतम करें। दोपहर होगई है सो चलकर भोजन करलें।" अर्जुन ने मामला समेटा।

और सब पर्णकुटी के अंदर गये।

: ७ :

सैरन्ध्री

पाण्डवों ने अज्ञातवास का एक वर्ष विराटनगर में बिताने का तय किया। उन्होंने अपने शस्त्रास्त्र इकट्ठे करके गाँव के बाहर वाले स्मशान के एक खेजड़े के पेड़ पर टांग दिये और नगर में प्रवेश किया।

भीम ने रसोइये का वेष धारण किया और राजा की पाक-शाला में रसोइये की नौकरी की। यहाँ उसने अपना नाम वल्लव रक्खा। अर्जुन ने स्त्री का वेष धारण किया, और रानी के महल में कुमारियों को संगीत और नृत्य सिखाने के काम में लगा। उसने अपना नाम बृहन्नला रक्खा। द्रौपदी रानी के महल में दासी बनी और उसका नाम सैरन्ध्री रक्खा गया।

विराट की रानी का एक भाई था। उसका नाम कीचक था। वह बड़ा लंपट और दुराचारी था। द्रौपदी दासी होकर तो रही, लेकिन उसका रूप कैसे छिप सकता था? वह कीचक द्रौपदी के रूप पर मोहित होगया और किसी भी प्रकार उसे अपनी बनाने के लिए प्रयत्न करने लगा। और विराटनगर में कीचक का इतना दबदबा था कि स्वयं राजा भी उसके मामले में कुछ नहीं कह सकते थे।

एक रोज़ दोपहर को भीम पाकशाला में पड़ा-पड़ा ऊंघ रहा था कि इतने में द्रौपदी आई।

"भीमसेन, भीमसेन, कैसे मज़े से यहाँ तुम नींद ले रहे हो? कुछ पता भी है" द्रौपदी ने पुकारा।

भीमसेन हड़बड़ाकर उठ बैठा। जंभाई लेता हुआ बोला; "द्रौपदी, इस समय भर दुपहरी में तुम यहाँ कैसे?"

"मेरे पाँच नाथ जब अनाथ जैसे हो गये हों तो मुझे यहाँ आना ही पड़े न?" द्रौपदी ने कहा।

"क्यों क्या बात है? कोई तुम्हारा नाम तो ले; उसी समय नाक उड़ा दूँ। बताओ तो क्या हुआ।" भीम ने द्रौपदी को चिढ़लाया और पूछा।

"बात और क्या है? उस कीचक को तो जानते ही हो?" द्रौपदी ने कहा।

"हाँ, हाँ, उस नामर्द को जानता हूँ।"

"वह कीचक अब मेरे पीछे पड़ा है।" द्रौपदी ने कहा।

"कीचक! उसमें इतना दम भी है? कीचक को तो मेरी एक लात ही काफ़ी है। कीचक द्रौपदी का क्या कर सकेगा?" भीम ने कहा।

"यह तो मैं समझती हूँ। वैसे तो मैं द्रुपद की पुत्री और पाण्डवों की पत्नी हूँ। भरी सभा में दुःशासन की भी ताक़त न थी कि मेरा चीर खींच सके।"

"यह मैं भी जानता हूँ कि द्रौपदी को आत्मरक्षण के लिए या

अपने शील की रक्षा के लिए किसी दूसरे की सहायता की ज़रूरत नहीं है।"

"यह तो ठीक है। हम स्त्रियों की रक्षा पुरुष क्या करेंगे! पवित्रता स्वयं अपनी रक्षा करा लेती है। नहीं कर सकती है तो वह पवित्रता नहीं है।" द्रौपदी ने कहा।

"फिर तुम किस असमंजस में पड़ी हो?"

"मैं सोचती यही हूँ कि मैंने कीचक का कुछ कर दिया और हम लोग पहचान में आ गये तो?" द्रौपदी बोली।

"यह तो दो महीने पहले या दो महीने बाद में। प्रकट तो होना ही पड़ेगा न! प्रकट हो जाने के बाद भी अब यह भीम दूसरे बारह साल जंगलों में भटकनेवाला नहीं है।" भीम ने कहा।

"महाराज युधिष्ठिर की प्रतिज्ञा जो है?"

"इस प्रतिज्ञा का फिर वह अकेले ही पालन करेंगे।" भीम ने कहा।

"यह तो सब ठीक है, लेकिन जब हमने विराटनगर में एक वर्ष बिना पहचान में आये बिताने का तय कर लिया है तो उसे पूरा करना चाहिए। इसलिए ऐसी स्थिति में कीचक का क्या करना यह तुमसे पूछने आई हूँ।" द्रौपदी ने संक्षेप में कहा।

"महाराज युधिष्ठिर की क्या राय है?" भीम ने पूछा।

"हे भगवान! इतने वर्ष होगये और अभी उनकी राय नहीं मालूम हुई? एक समय दुष्ट कीचक मुझे मारता-मारता राजसभा में ले गया उस समय महाराज वहाँ उपस्थित थे।" द्रौपदी ने कहा।

"तो फिर उन्होंने कीचक का गला पकड़कर वहीं-का-वहीं मसल नहीं दिया ? क्या किया उन्होंने ?" भीम उतावला हुआ।

"वह क्या मारेंगे! उनके हथियार तो दया, क्षमा और धीरज हैं न ? मुझे दूसरे न समझ सकें इस तरह सांकेतिक भाषा में कहा कि सैरन्ध्री, तुम धीरज रक्खो। तुम्हारी रक्षा करनेवाले पाँचों गंधर्व इसके लिए जो उचित होगा अवश्य करेंगे।" द्रौपदी ने कहा।

"ऐसी बात! तो कीचक ने तुम्हें भरी सभा में मारा!" भीम ने होठ चबाये।

"वह तो मारता ही न ? राजा तो कीचक से बहुत डरते हैं। क्योंकि रानी कीचक की इस लंपटता को बढ़ावा देती है।" द्रौपदी ने कहा।

"यह बात है! तब तो यह सारा-का-सारा कुनबा ही सड़ा हुआ है।" भीम ने कहा।

"इसीलिए तो रानी मुझे बारबार कीचक के पास किसी-न-किसी काम के बहाने भेजा करती हैं। परसों के रोज आसव लेकर भेजा तो मैंने देखा कि कीचक की आँखों में काम व्याप रहा है और उसने मुझे अधमरी कर डाला।" द्रौपदी ने बताया।

"ठीक है, तो द्रौपदी, तुम यों करो। ऐसा प्रकट करो कि कीचक पर तुम्हें प्रेम है और उससे एकांत में मिलने का तय करो; फिर उस जगह तुम्हारे बदले मैं जाऊँगा और वहीं कीचक को खतम कर दूँगा।" भीम ने समझाया।

"तो फिर कल का दिन ही ठीक है। मैं कीचक से कल नई नृत्यशाला में आने के लिए कहूँगी। उस नृत्यशाला में दिन में तो लड़कियाँ नृत्य सीखने आती हैं, लेकिन रात में कोई नहीं होता। वहीं तुम भी आजाना।" द्रौपदी ने कहा।

"हाँ, ठीक है। मैं कीचक के आने से पहले ही वहाँ पलंग पर जाकर सो जाऊँगा। फिर कीचक सैरन्ध्री से आलिंगन करने आवेगा और मृत्यु का आलिंगन करेगा।" भीम ने अपना निश्चय बताया।

द्रौपदी जाते-जाते बोली—"लेकिन देखना, रात को कहीं यहीं ऊँघने न लग जाना नहीं तो वह लंपट रानी के महल से मुझे पकड़कर ले ही जायगा।"

"ऐसी बात भला मैं भूल सकता हूँ। हाँ कभी-कभी दाल या शाक में मसाला डालना भूल जाता हूँ और राजा का उलहना भी सुनना पड़ता है। लेकिन ऐसी बातों में भीमसेन भूल जाय तो फिर हो गया न!"

× × × × ×

"रानी जी, भाई को तो किसीने मार डाला।"

"क्या कहा? भाई को? किस राक्षस ने मारा? मैं तो उससे पहले ही कहती थी कि इस चुड़ैल के रास्ते मत जाओ। लेकिन वह नहीं माना। इसी चुड़ैल ने मरवाया होगा।" रानी ने रोते-रोते कहा।

"ऐसा ही कुछ है। किसने मारा, किस तरह मारा, इसका

कुछ पता नहीं चलता। हमने तो नृत्यशाला में जाकर देखा तो हमें मांस का बड़ा-सा पिंड दिखाई दिया। न तो मुंह पहचान में आता है और न हाथ-पैर, न सिर! मांस की एक गोल गेंद जैसा दिखता है।"कीचक के भाई ने कहा।

"वह शंखिनी कहां गई?"

"वह सैरन्ध्री तो वहीं एक खंभे के पीछे छिपकर बैठी है।"

"तुम चलो, मैं आती हूं।"

रानी नृत्यशाला में पहुंची और ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। जब उसकी नज़र द्रौपदी की तरफ़ गई तो वह गुस्से में बोली—"यह रही पापिनी! मुझे ऐसा मालूम होता तो इसे रखती ही क्यों? आखिर मेरे भाई के प्राण लेलिये न? चल चाण्डालिन, तुझे भी अब मेरे भाई के साथ ही जला दूंगी, जिससे मेरे भाई की आत्मा को सन्तोष तो होगा! बांध लो इस पापिनी को मेरे भाई की ठठरी के साथ।" यह कहकर रानी ज़ोर से रोने लगी।

लोगों ने द्रौपदी को कीचक की ठठरी के साथ बांध लिया और श्मशान की तरफ़ चले।

इसी बीच भीम को इसकी खबर पड़ी तो उसने रसोइये का वेष उतार कर गंधर्व का विचित्र वेष धारण किया और कीचक के एकसौ पांच भाइयों को मार डाला और द्रौपदी को छुड़ाकर घर ले आया।

: ८ :

गुरु-पुत्र का वध

"लेकिन भीमसेन, आज तुम इतनी जल्दी कैसे उठ गये ?" द्रौपदी ने पूछा।

"आज हम अपने तंबू में नहीं सोये थे। बड़ी रात हुए यहीं पास के तंबू में सोने आगये थे।" भीम ने कहा।

"मुझे अभी एक सपना आरहा था कि हम सब एक महासागर के किनारे खड़े हैं और महासागर की विशाल लहरें किनारे पर टकराकर टूटकर गिर पड़ती हैं।" द्रौपदी ने कहा।

"देवी, कल तो दुर्योधन का भी अंत होगया इस कारण अब हमारा पूरा विजय समझना चाहिए।" भीम ने कहा।

इतने में दरवाज़े से आवाज़ आई—"देवी गजब होगया !"

"कौन है ? क्या हुआ ?"

"देवी, कुमार धृष्टद्युम्न……"

"कुमार ने किसी को मार डाला मालूम होता है।"

"कुमार धृष्टद्युम्न मार डाले गये।"

"तुम यह क्या बोल रहे हो ?"

"और सारे पांचालों का भी संहार होगया।"

"एं ? पांचाल भी मारे गये ?"

"और........."

"अभी और बाक़ी रह गया है? जल्दी से कह डाल। और क्या?"

"और देवी पांचाली के पुत्रों को भी क़त्ल कर दिया गया है।"

"मैं यह क्या सुन रही हूं?" द्रौपदी विह्वल हो गई।

"मैं सच कह रहा हूँ।"

"भाई धृष्टद्युम्न, मेरे प्यारे बच्चे, मेरे शूरवीर पांचाल, तुम सब कहाँ गये? मुझे क्यों छोड़ गये?" द्रौपदी की आंखों में से आंसुओं के बदले आग निकलने लगी।" हाँ, लेकिन इन सबको मार डालनेवाला पापी कौन है? कहो तो मेरे भीम उसे भी यमराज के यहाँ भेजें।"

"अश्वत्थामा ने इन सबको मार डाला है।"

"अश्वत्थामा ने? अश्वत्थामा! अगर तुझे पांचालों को नष्ट ही कर डालना था तो मुझे जिन्दा क्यों छोड़ा? यहाँ आया होता तो तुझे भी पता चल जाता कि द्रुपद की पुत्री तेरी क्या गति करती है।"

"देवी शांत होओ।" भीम ने कहा।

"भीमसेन मुझे शांत होने के लिए कहते हो? मैं डरती बिलकुल नहीं हूं। मैं धृष्टद्युम्न के साथ ही अग्नि में से पैदा हुई हूँ। लेकिन मुझे तो अश्वत्थामा से बदला लेना है। वह भी जान जाय कि शेरनी को छेड़ना कैसा कठिन होता है। अश्वत्थामा गया किस तरफ है?"

"इधर उत्तर दिशा की तरफ़।"

"चलो मैं उधर चलती हूँ।"

"देवी तुम ज़रा धीरज धरो। मैं उस पापी को तुम्हारे सामने लाकर उपस्थित करता हूँ।" भीम ने कहा।

"तुम क्या यहाँ लानेवाले हो। अगर तुम चाहते तो उसकी मजाल थी जो वह मेरे भाई और बच्चों पर हाथ उठाता ?" द्रौपदी बोल उठी।

इतने में युधिष्ठिर, अर्जुन और श्रीकृष्ण वहाँ आगये।

"देवी पांचाली शांत होओ।"

"कैसे शांत होऊँ ? जिनको मैंने दूध पिलाया उन अबोध बालकों को कोई क़त्ल कर जाय और मैं शांत रहूँ ? शेरनी के पास से उसके बच्चों को छीनकर देखो कि वह कैसे शांत रहती है। यह तो आज मेरे दिन ही खराब हैं न कि मैं यहाँ रही और उसने उनको मार डाला !" द्रौपदी उत्तेजित होकर बोली।

"भीमसेन, अर्जुन तुम दोनों जल्दी जाकर अश्वत्थामा को खोज निकालो। लेकिन देखना कुछ भी हो वह हमारा गुरुपुत्र है।" युधिष्ठिर ने कहा।

"देखना भीमसेन, अर्जुन, मेरे पुत्रों को क़त्ल करनेवाले गुरुपुत्र का स्पर्श भी मत करना। वह गुरुपुत्र है !" द्रौपदी ने अपने होंठ चबाये।

"और कोई मेरा एकाध बच्चा रह गया हो तो उस गुरुपुत्र को सौंपदेना और कहना कि यह रह गया था सो आपके पिता

के श्रद्धालु शिष्य ने भेजा है। इसे भी समाप्त कर दीजिए। गुरुपुत्र जो है!" अन्तिम वाक्य द्रौपदी ने युधिष्ठिर को सुनाकर कहा।

"देवी, महाराज के कहने का मतलब यह नहीं है।" अर्जुन ने कहा।

"नहीं तो महाराज का और क्या कहना है? मेरे भाई को मार डाला, मेरे पांचों पुत्रों को मार डाला, वीर पांचालों को जड़मूल से खतम कर दिया और फिर रहा गुरुपुत्र का गुरुपुत्र ही? ऐसे गुरुपुत्रों की मैं जानती हूँ कि कैसी पूजा करनी चहिए।" द्रौपदी बोली।

"देवी शांत होओ। मैं उसे अभी पकड़ कर लाता हूँ।" भीम ने कहा।

"प्रिय भीमसेन, भगवान् तुम्हें लंबी उमर दे। ऐसे समय पर मेरे हृदय की व्यथा एक मात्र तुम्हीं जानते हो! आज तो मैं इस गुरु-पुत्र के सिर की भूखी हूँ।" द्रौपदी ने कहा।

"भीमसेन, अर्जुन, तो चलो हम अश्वत्थमा की खोज में चलें और उसे पकड़ लावें।" श्रीकृष्ण ने कहा।

"जनार्दन, उस पापी को जबतक आप पकड़कर नहीं लावेंगे तब तक मुझे चैन नहीं मिलेगी। अगर तुम उसे नहीं लाओगे तो मैं इस रणभूमि पर बिना अन्नजल किये पड़ी रहूँगी और अपने प्राण छोड़ दूँगी।" द्रौपदी ने आंखों में आंसू भर कर कहा।

द्रौपदी बैठी विलाप करने लगी और भीम, अर्जुन और श्रीकृष्ण अश्वत्थामा की खोज में निकल पड़े।

एक घने जंगल में वह छिपा बैठा था। भीम ने उसे खोज निकाला। तुमुल युद्ध के बाद भीम ने उसे पकड़ा और रथ में डालकर उसे द्रौपदी के सामने ले आये।

"पांचाली, लो यह रहा अश्वत्थामा।" भीम ने कहा।

"पापी अश्वत्थामा!" द्रौपदी ने ललकारा।

"शत्रुओं को मारना अगर पाप है तो मैं ज़रूर पापी हूं और पाण्डवों सहित और सब लोग भी पापी हैं।" अश्वत्थामा ने कहा।

"नीच ब्राह्मण, चुप करो। सोते में मेरे भाई का सिर काटते हुए तुझे शरम नहीं आई?" द्रौपदी ने कहा।

"शरम क्यों आवे? तुम्हारे भाई ने मेरे ध्यानस्थ पिता का सिर उतारा इसके बदले में मैंने तुम्हारे भाई का सिर उतार लिया। शरम अगर आनी चाहिए तो दोनों को बराबर आनी चाहिए।" अश्वत्थामा ने कहा।

"नीच ब्राह्मण, मेरे पुत्रों ने तेरा क्या बिगाड़ा था? मेरे तमाम पांचालों का संहार करके मेरे मन के मनोरथों को तूने धूल में मिला दिया। इस विजय को तूने ज़हर कर दिया"। द्रौपदी कहने लगी।

"पांचाली, द्रुपदराज की पुत्री! पाण्डवों की महारानी! मैंने यह सब अपने स्वामी दुर्योधन के मन की शान्ति की ख़ातिर ही

किया है। बाकी तो जैसे तुम्हारे लड़के मारे गये उसी प्रकार कौरवों के भी तो अनेक बच्चे इस महायुद्ध में धूल में मिला दिये गये हैं। उनका भी तुमने विचार किया है? अठारह दिन हो गये हैं लाखों स्त्रियाँ टिटहरी के समान विलाप कर रही हैं उसका पाप पाण्डवों को नहीं लगेगा और तुम्हारे पाँच पुत्रों का पाप मुझे ज़रूर लग जायगा; ईश्वर के यहाँ ऐसा ही न्याय है क्या? द्रौपदी पांचाली! मुझे ज़हर चढ़ा और मैंने तुम्हारे पुत्रों को मार डाला, यह बात सच है।" अश्वत्थामा ने कहा।

"तो द्रौपदी, जो सज़ा तुम इस अश्वत्थामा को देना ठीक समझो वही सज़ा दी जाय।" श्रीकृष्ण ने कहा।

"ख़ून का बदला ख़ून है। इसका सिर काट डालो। यद्यपि इतने से भी मेरे दिल की शान्ति तो नहीं ही होगी।" पांचाली ने कहा।

"बहन, ज़रा शान्त होओ।" श्रीकृष्ण ने कहा।

"श्रीकृष्ण, मेरे रोम-रोम में दुःख और क्रोध व्याप रहा है। इस समय मैं आपे में नहीं हूँ। अगर राक्षसी हो सकूँ तो इस अश्वत्थामा को कच्चा का कच्चा खाजाने की इच्छा होती है।" द्रौपदी ने कहा।

"लेकिन द्रौपदी तो राक्षसी नहीं है। वह तो द्रुपद की पुत्री है, पाण्डवों की धर्मपत्नी है। भीष्मादि की कुलवधु है। उसके शरीर में मानवियों का ख़ून है। उसके हृदय में मानवियों की आत्मा है। इसीसे मैं कह सकता हूँ कि पांचाली शान्त होओ।" श्रीकृष्ण ने कहा।

"अर्जुन, इस पापी का वध करो।"

"अच्छा।" अर्जुन ने कहा।

"लेकिन अर्जुन, तुम्हारा हाथ क्यों कांप रहा है? इस सारी अक्षौहिणी सेना को मारते समय तुम्हारा हाथ नहीं कंपा और अब इस एक को मारते हुए रुक रहे हो?" द्रौपदी बोली।

"यह ब्राह्मण है और तिस पर गुरुपुत्र।" श्रीकृष्ण ने कहा।

"अर्जुन ने तो गुरु दक्षिणा में मेरे पिता को बाँधकर द्रोणाचार्य के सामने हाज़िर कर दिया था। इससे उनका ऋण तो चुक गया था।" द्रौपदी से न रहा गया।

"लेकिन गुरुपुत्र का वध कैसे हो? अर्जुन का हाथ रुकना स्वाभाविक है। चाहे जैसा भी हो तो भी वह ब्राह्मण है। उसने जो कुछ भी किया वह दुर्योधन के प्रति अपनी भक्ति के कारण किया है। बाक़ी तो द्रौपदी, इस युद्ध में ऐसे-ऐसे काम हुए हैं कि उनका अगर हिसाब करने बैठें तो जीना दूभर हो जाय। यह तो तुम और सब पाण्डव इस युद्ध का जब निष्कर्ष निकालोगे तब सच्ची ख़बर पड़ेगी।" श्रीकृष्ण ने कहा।

"श्रीकृष्ण, आप भी यों बोलोगे? तो भले ही इन गुरुपुत्र को जाने दो और मुझे मरने दो। अब मेरी ज़रूरत भी तो नहीं रही।" द्रौपदी ने कटाक्ष किया।

"यों क्यों बोलती हो पांचाली, काम तो तुम्हारा अब है।" अर्जुन ने कहा।

"तो मेरी तो प्रतिज्ञा है कि या तो अश्वत्थामा का वध होगा नहीं तो मैं अनशन करके मर जाऊँगी।"

"लेकिन अश्वत्थामा का सिर धड़ से अलग करदेने से ही क्या उसका वध हो जायगा ?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"हाँ इसीसे।" द्रौपदी ने कहा।

"यह तो मात्र स्थूल वध है। ऐसे वध को तो सब कोई सहन कर लेते हैं।" श्रीकृष्ण ने कहा।

"तो इसका दूसरा वध किस प्रकार हो सकता है ?"

"हो सकता है। सिर काटना तो स्थूल वध है। ऐसा वध तो नीच जनों का ही करना योग्य है। अश्वत्थामा का तो ब्राह्मण-वध होना चाहिए।" श्रीकृष्ण ने कहा।

"ब्राह्मण-वध किस प्रकार हो ?" द्रौपदी ने पूछा।

"देवी, अगर क्षत्रिय का वध करना हो तो उसके शस्त्रास्त्र छीन लेना चाहिए। शस्त्रास्त्र के विना क्षत्रिय मरा हुआ ही है। वैश्य का वध करना हो तो उसका व्यापार छीन लेना काफ़ी है। शूद्र का वध करना हो तो उसका कोई अंग काट लेना ठीक है। लेकिन ब्राह्मण का वध करना हो तो उसका ब्रह्मतेज छीन लेना चाहिए।" श्रीकृष्ण ने जवाब दिया।

"लेकिन उसका ब्रह्मतेज छीन लेने पर भी वह जिन्दा तो रहेगा ही न ?" द्रौपदी ने पूछा।

"हाँ वह तो जियेगा ही और उसका जिन्दा रहना ही उसके वध करने का खास चिन्ह है। ब्रह्मतेज से रहित होकर भी जिन्दा रहना ही ऐसों के लिए मौत के बराबर है। कई बार तो

ऐसों को मार डालना उन पर एक प्रकार का उपकार जैसा हो जाता है।" श्रीकृष्ण ने समझाया।

"श्रीकृष्ण, आप मेरे सच्चे सलाहकार हैं। मैं आपके कहे अनुसार करने को तैयार हूँ। द्रौपदी ने कहा।

"तो देखो, इस अश्वत्थामा के सिर में एक मणि है। इसी में इसका शुद्ध ब्राह्मणत्व है। ब्राह्मण के सिर में से वह मणि लेलो फिर ब्राह्मण और पशु दोनों बराबर ही समझो। जब-जब किसी ब्राह्मण का वध करना हो तो उसके सिर का मणि छीन लेना। फिर भले ही वह संसार में भटकता फिरे।" श्रीकृष्ण ने कहा।

"मुझे भी यही बात ठीक लगती है।" अर्जुन ने कहा।

"तो भाई, मुझे भी यह मंजूर है। पापी अश्वत्थामा, जा। मणि रहित होकर संसार में घूम और ईश्वर तुझे चिरंजीव करे जिससे अपनी पापी देह लेकर तू जगह-जगह फिर और अपने पाप का फल भोग।" द्रौपदी ने कहा।

मणि खोकर आश्वत्थामा जंगल में चला गया। लोग कहते हैं कि आज भी अश्वत्थामा, जहाँ महाभारत की कथा होती है, चुपचाप आकर बैठ जाता है और कथा सुनता रहता है।

: ९ :

काल के खिलौने!

महाभारत का युद्ध खतम होगया। पाण्डव विजयी हुए। इस विजय की यादगार में पाण्डवों ने एक अश्वमेध यज्ञ किया और महाराज युधिष्ठिर सार्वभौम राजा हुए।

लेकिन खून से रँगा हुआ यह विजय पाण्डवों को और द्रौपदी को शान्ति नहीं दे सका। युद्धभूमि पर लाखों योद्धा मृत्यु को प्राप्त हुए और करोड़ों स्त्रियों और बालकों को विलाप करते हुए छोड़ गये। इस ओर जीवन के तमाम स्नेह-सूत्र टूट जाने से धृतराष्ट्र और गांधारी तप के लिए वन में चले गये। कुन्ती भी उनके साथ गईं। द्वारिका में यादव आपस में ही लड़कर कट मरे और श्रीकृष्ण ने भी अपनी लीला संवरण कर ली। इस प्रकार पाण्डवों के हाथ में साम्राज्य का एक स्थूल खोखा रह गया; उसका रस चला गया था। सारी पृथ्वी उनको शून्य और वीरान लगती थी। जीवन में मिठास नहीं रह गया था। इस कारण पाण्डव भी परीक्षित को गद्दी पर बिठाकर, द्रौपदी सहित हिमालय की तरफ़ चल दिये।

रास्ते में चलते-चलते एक सरोवर के पास एक महापुरुष ने अर्जुन को रोका और कहा—"पृथापुत्र अर्जुन, तुमने लोभवश

अभीतक इस गांडीव को अपने पास रख छोड़ा है। अब तुम सब लोगों का अवतार-कृत्य समाप्त हो चुका है इसलिए इस धनुष को भी फेंक दो। इस गांडीव का काम भी समाप्त हो चुका है। फिर जब इसकी ज़रूरत पड़ेगी तो वह अपने आप उपस्थित हो जायगा।"

इन महापुरुष के वचनों को सुनकर अर्जुन ने गांडीव को छोड़ दिया और सब आगे चले।

"द्रौपदी, थक तो नहीं गई न ?" भीम ने पूछा।

"अभी तो कुछ मालूम नहीं पड़ता।" द्रौपदी ने कहा।

"अभी भी अगर हस्तिनापुर वापस जाना चाहती हो तो जा सकती हो।" युधिष्ठिर ने कहा।

"महाराज युधिष्ठिर, आज से कुछ वर्ष पहले हस्तिनापुर जाने का जो मोह था, आज वह नहीं रहा। जबतक साम्राज्ञी का मुकुट पहना नहीं था तबतक उसका खूब लोभ था लेकिन अब मुझे ख़याल आता है कि उसके भार के नीचे कैसे भले-भले लोग दब मरते हैं। यह ख़याल आते ही मैं भी आप लोगों के साथ भाग निकली।" द्रौपदी ने कहा।

"लेकिन देवी, आपको तो युद्ध में बहुत रस था न ?" सहदेव ने कहा।

"हां, वनवास के दुःखों की अपेक्षा मुझे युद्ध अच्छा लगता था। लेकिन अब तो मैंने युद्ध भी देख लिया और साम्राज्य भी देख लिया। लेकिन आज यह सब व्यर्थ मालूम होता है। उस समय

तो मैं युद्ध के लिए कूदती थी और युधिष्ठिर को कायर तक कह दिया करती थी लेकिन मुझे और हम सब को कहाँ पता था कि काल की लहरों के सामने हम सब कुछ नहीं हैं। इन अर्जुन को ही देखो न? श्रीकृष्ण की स्त्रियों को हस्तिनापुर ला सके? और अपने गांडीव को भी उन्हें छोड़ना पड़ा न? इसमें अर्जुन की क्या बहादुरी, गांडीव की भी क्या बड़ाई और श्रीकृष्ण का भी कौन सा बड़प्पन? हम तो सब काल के खिलौने हैं। परमेश्वर के किसी गूढ़ संकेत के अनुसार हम सब हिरे-फिरे, शादी की, लड़े और आज हिमालय की तरफ़ चल रहे हैं। पृथ्वी पर से मेरे पिता अदृश्य हो गये, मेरा भाई समाप्त होगया, मेरे प्यारे बच्चे सिधार गये, हज़ारों पांचाल लोग ख़तम होगये, और अठारह अक्षौहिणी सेना भी काल के मुँह में समा गई, कल ही कुन्ती और गान्धारी भी गईं और आज हम छओं लोग भी जाने को हैं। इन सब दृश्य और अदृश्य के पीछे जिसका अस्तित्व है ऐसे काल भगवान् को मेरे सहस्र नमस्कार हैं।" यह बोलते-बोलते द्रौपदी गिर पड़ी।

"क्यों, क्या हुआ?" अर्जुन तुरत ही द्रौपदी के पास आया और बोला।

"महाराज युधिष्ठिर, मेरा अंत समय अब पास ही है। मुझे क्षमा कीजिए। आज जो बात समझ में आरही है वह अगर कुछ बरस पहले समझ में आजाती तो मैं तुम सबको लड़ाई के लिए मना ही करती। लेकिन आज तो अब ये बुद्धिमानी की बातें सब व्यर्थ की हैं। भीमसेन, मेरे ख़ातिर तुमने भीषण प्रति-

ज्ञायें पूरी की। इसलिए मुझे क्षमा करो। अर्जुन मेरी खातिर तुमने अनेकों का संहार किया इसलिए मुझे क्षमा करो। नकुल, सहदेव तुम भी मुझे क्षमा करो..........."

"लेकिन आप लोगों से मांगी क्षमा किस काम की? क्षमा तो दुर्योधन करे तब ठीक। क्षमा तो कर्ण, शकुनि करे तब ठीक। क्षमा तो यह अठारह अक्षौहिणी सेना करे तब ठीक।

"माँ आज तुम यहां होती तो कैसा अच्छा होता? लेकिन इसमें भी आपका क्या क़सूर? आप भी तो मेरे समान काल के हाथ के खिलौने थे। भाई धृष्टद्युम्न मुझे देखकर हंस क्यों रहा है? मैं भी तुम्हारे पास आरही हूँ।"

पाँचों पाण्डव द्रौपदी के सिर पर हाथ फेरकर उसे शांत कर रहे थे और द्रौपदी के प्राण पखेरू उसका कलेवर छोड़कर उड़ गये।

इस प्रकार पांचाल की पुत्री, द्रुपद की प्यारी पुत्री, पाण्डव की प्रिय पत्नी, और धृष्टद्युम्न की बहन पृथ्वी पर से अदृश्य होगई।

दुर्योधन

धृतराष्ट्र का पुत्र

"भाई विदुर, देवी गांधारी की तबियत अब कैसी है ?" प्रज्ञा-चक्षु राजा धृतराष्ट्र ने पूछा।

"अब तो तबियत ठीक होती जारही है।"

"यह एकाएक पेट में दर्द कैसे होने लगा ?"

"गांधारी ने ही आवेश में आकर अपने पेट में मार लिया इससे एकदम पेट में दर्द होने लगा। गर्भवती स्त्रियां नादान होकर जब कुछ का कुछ कर डालें तो दूसरा और क्या होगा ?" विदुर बोले।

"बेचारी गांधारी ! दुःखी न हो तो करे क्या ? विदुर, तुम मेरे भाई हो इसलिए अपने मन की बात तुमसे कहता हूँ। दो दिन पहले जब कुंती के सूर्य के समान तेजस्वी पुत्र होने का समाचार मिला तभीसे गांधारी को नींद नहीं आई है।" धृतराष्ट्र ने सिर उठा कर कहा।

"लेकिन यह तो आनन्द का समाचार था !" विदुर ने कहा।

"विदुर, तुम्हारे लिए यह आनंद का समाचार है। पांडु के घर पहले-पहल पुत्र-रत्न हुआ इसकी खुशी तो मुझे भी हुई। लेकिन गांधारी ? उसे गर्भवती हुए आज दो वर्ष होने को आये।

नौ या दस महीने में ही अगर प्रसव होगया होता तो कौरव राज्य का युवराज गांधारी ने ही पैदा किया होता। लेकिन कुंती को पहले लड़का हुआ इसलिए वह बेचारी निराश न होगी ?" धृतराष्ट्र ने प्रश्न किया।

"यह किसीके हाथ की बात तो है नहीं। अपने पेट में मार लेने का कारण चाहे जो हो, लेकिन पेट में मारा और दर्द हुआ इतना ही मैं जानता हूँ।" विदुर बोले।

"लेकिन अब तो दर्द शांत होगया न ?"

"दर्द तो कभी का शांत होगया है। जिस समय मारा था उस समय तो ज़ोर की पीड़ा हुई थी, लेकिन उसके बाद पेट में से एक कठोर लोहे जैसा मांस का पिंड निकला।" विदुर बोले।

"ऐं ! क्या कठोर मांस का पिंड ?"

"बिलकुल सख़्त लोहे के जैसा मांस-पिंड।"

"मांस-पिंड ? गांधारी को तो शंकर का सौ पुत्र होने का वरदान था न ?" धृतराष्ट्र ने प्रश्न किया। "लेकिन यह तो मेरा भाग्य उसके रास्ते में आगे आया होगा न ?"

"उस मांस-पिंड को देवी गांधारी फेंक रही थी कि इतने में उनको दैवी सलाह मिली कि...........।"

"दैवी सलाह !" धृतराष्ट्र ने उतावले होकर पूछा, "किसकी सलाह ? शंकर की या ब्रह्मा की ? क्या सलाह थी वह ?"

"सलाह यह मिली कि उस मांस के टुकड़े पर ठंडा पानी डालते रहने से उस एक मांस-पिंड के सौ टुकड़े होंगे।"

"ऐसा ! फिर ?"

"फिर उन सौ टुकड़ों को घी से भरे वर्तन में बराबर संभाल कर रख देना। फिर समय जाते उस हरेक टुकड़े में से एक-एक पुत्र पैदा होगा।"

"यह तो बड़े ताज्जुब की बात रही। महापुरुष किस प्रकार वरदान देते हैं और वे किस तरह से फलते हैं, यह कुछ समझ में नहीं आता। तो फिर तुमने इस प्रकार किया?" धृतराष्ट्र ने पूछा।

"हां, तुरन्त ही। ऐसा करने से उस मांस के टुकड़े के सौ हिस्से हुए और उन सभीको घी के बर्तन में रखकर मैं आया हूँ।" विदुर ने बताया।

"बराबर सौ भाग हुए ?"

"हां, बराबर सौ। फिर तो देवी को एक लड़की की भी इच्छा हुई इसलिए सौ भागों में से जो छोटे-छोटे टुकड़े बचे थे उनको मिलाकर एक हिस्सा किया गया और उसमें से लड़की का जन्म होगा ऐसा मालूम पड़ता है।" विदुर बोले।

"ये सब कब पैदा होंगे ?"

"जब पूरे दो वर्ष होंगे तब।"

"अभी और दो वर्ष लगेंगे ? तबतक तो पांडु के घर दूसरा राजकुमार भी जन्म ले चुकेगा। लेकिन विदुर, तुमसे एक बात पूछूँ?" धृतराष्ट्र ने कहा।

"महाराज, खुशी से पूछिए।"

"लेकिन ये वात तू अपने मन में ही रखना। हमारे कुल में, जिस राजकुमार का गर्भ पहले रहे वह राज्य का वारिस माना जाता है या जिसका जन्म पहले होता है वह? यद्यपि मेरे मन तो पांडु के पुत्र ही कौरवों के राज्य के वारिस हैं, इसमें कोई शक नहीं; लेकिन गर्भाधान के समय को गिनने में लेना चाहें तो ले सकते हैं या नहीं?" धृतराष्ट्र ने शंका की।

"महाराज, आज यह सवाल पैदा ही कहाँ होता है? अभी वर्तन में पड़े हुए मांस के टुकड़ों को पकने तो दो!" विदुर ने कहा।

"मैं तो यों ही पूछता हूँ। मेरी तो आँखें ही नहीं हैं इसलिए मैं क्या देख सकता हूँ? और फिर जबतक भीष्मपितामह मौजूद हैं तबतक मुझे और तुझे फिक्र ही किस वात की करनी चाहिए? यह तो एक मेरे मन में ज़रा-सा विचार आया और मैंने तुमको कह दिया। इस विचार का कोई अर्थ नहीं है।" धृतराष्ट्र खुलासा करने लगे।

"बग़ैर अर्थ के तो मनुष्य कभी बोलता ही नहीं है। हम लोगों को जो वात वग़ैर अर्थ की लगती है उसमें भी अर्थ तो होता ही है और कई वार तो बहुत ही गंभीर अर्थ होता है। हाँ, सुननेवाले में इस अर्थ को निकालने की शक्ति होनी चाहिए।" विदुर ने कहा।

"विदुर, तुम ज़रा जाकर फिर से तो देवी की खबर ले आओ? तुम्हें यहाँ आये बहुत देर हो गई है।" धृतराष्ट्र ने वात को पलटते हुए कहा।

"अच्छा महाराज, यह जाता हूँ।"

× × ×

"विदुर, यह आवाज़ किस चीज़ की आरही है?"

"उस पहले वर्तन में से पुत्र उत्पन्न हुआ है उसकी खुशी की।"

"ऐं! क्या कहते हो? फिर से तो एक वार इन शब्दों को बोल, जिससे मैं ज़रा मन भर उसे सुनूँ।" धृतराष्ट्र आतुरता से सुनने लगे।

"देवी गांधारी आज पुत्रवती हुई हैं।"

"देवी! देवी! आज तुमने मुझे कृतार्थ कर दिया। विदुर, तुम जाकर यह समाचार पितामह को दे दो और ब्राह्मणों को बुलाकर राजकुमार के ग्रह वगैरा दिखलाओ।"

"पितामह को समाचार भेजा जा चुका है। और ज्योतिषियों को तो देवी ने कभी का बुला लिया है।" विदुर ने कहा।

"तो ठीक। ज्योतिषियों से कहो कि मेरे पुत्र की कुंडली ठीक तरह से बनावें।" धृतराष्ट्र बोले।

"वे लोग कुंडली बना रहे हैं और यह लो देवी स्वयं ही यहाँ आरही हैं।"

"कहाँ हैं? देवी गांधारी, तुमने मुझे भाग्यशाली बना लिया।" धृतराष्ट्र गद्गद होगये।

"भाग्यशाली या दुर्भाग्यशाली?"

"देवी, ऐसा न बोलो। गांधारी के पुत्रों ने तो मेरे घर को आज आबाद कर दिया है।"

"यह कहो कि बरबाद कर दिया, आग लगादी।"

"देवी, ऐसा न बोलो।"

"महाराज, मैं ठीक कह रही हूँ। ये ज्योतिषी ठीक कहते हैं कि यह पुत्र सारे कौरव-कुल का नाश करेगा।" गांधारी ने कहा।

"तुम यह क्या कह रही हो? अभी तो बर्तन में से बाहर ही निकला है और सारे कुल का नाश करदेगा! क्या जोतिषी ऐसा कह गये हैं?" धृतराष्ट्र से न रहा गया।

"ज्योतिषी लोग तो वही बात बतावेंगे जो ग्रह और लग्न में होगी।" गांधारी बोली।

"ऐसे कौन-से अमंगल मुहूर्त में यह आया?" धृतराष्ट्र ने पूछा।

"महाराज, जब इस इस पुत्र का जन्म हुआ तब उसके रोने की आवाज़ गधे जैसी थी।" विदुर ने कहा।

"ऐसे तो सभी बच्चे जब पैदा होते हैं तो रोते हैं।"

"और ज्योतिषी कहते थे कि उस समय गाँव के सारे गधे एकसाथ रेंकने लगे थे।" गांधारी बोली।

"यह तो किसीने एकसाथ सबको मारा होगा।" धृतराष्ट्र ने बहाना ढूंढा।

"जैसा आपको अच्छा लगे वैसा करो। मुझे तो तुम्हारे ये ज्योतिषी कहते हैं कि यह पुत्र सारे कौरव-कुल का नाश करेगा इसलिए उसका त्याग करो।" गांधारी बोली।

"देवी, देवी, तुम्हारे ये ज्योतिषी सारे-के-सारे निपूते मालूम

होते हैं। तुम्हें कोई दूसरे अच्छे ज्योतिषी नहीं मिले ? त्याग करो, त्याग करो, इसका क्या मतलब हुआ ? बोलो, तुम ही इसका त्याग करने को तैयार हो क्या ?" धृतराष्ट्र ने पूछा।

"हां, मैं तो तैयार हूं। तुम्हारे सारे कुल की खातिर मैं अपने एक पुत्र का त्याग करने को खुशी से तैयार हूं।" गांधारी बोली।

"ये सब व्यर्थ की बातें हैं। दैव को अगर कुल का नाश ही करना होगा तो तुम इसे जंगल में भी फेंक दोगी तो वहां से भी यह बड़ा होकर हमारा नाश करने आ पहुंचेगा।" धृतराष्ट्र बोले।

"जंगल में भला दो दिन का बच्चा जिंदा ही कैसे रहेगा ?" वहां तो शेर, चीते आदि जानवर मार नहीं डालेंगे ?" विदुर बोले।

"दैव की इच्छा हो तो शेर और चीते भी मार डालने के बदले खुद अपना ही दूध पिलाकर बड़ा करदेंगे। अगर दैव ही को हमारा विनाश करना होगा तो इस पुत्र के त्याग करने से रुक थोड़े ही जायगा ? पितामह और विदुर जैसे महान पुरुष जिस वंश के संरक्षक हैं उस कुल का नाश करने की ताक़त किसी-में नहीं हो सकती। मुझे तो उसका त्याग नहीं करना है। विदुर, तुम्हें कैसा लगता है ?" धृतराष्ट्र ने पूछा।

"मुझे तो देवी जो कहती हैं वह ठीक लगता है। यह एक जायगा तो भी बाद में दूसरे निन्नानवें पुत्र भी तो हैं।" विदुर बोले।

"विदुर, दूसरे निन्नानवें हैं तो क्या इसका यह मतलब है कि

यह एक फालतू है ? संसार की जननियों से पूछो तब मालूम पड़ेगा। गांधारी कैसे त्याग की बात कर रही हैं यही मुझे समझ में नहीं आता। मैं तो कहता हूँ कि उसको सम्हालकर रक्खो और बड़ा करो। जब बड़ा होगा तब उसको अपने अंकुश में रखना मेरा काम।" धृतराष्ट्र बोले।

"आप अंकुश में रख चुके। अभीतक किसीको आपने अंकुश में रखा भी है ? जो स्वयं अपनेको अंकुश में नहीं रख सकता वह दूसरे को क्या अंकुश में रक्खेगा! अच्छी बात है; आपकी जैसी इच्छा हो करो। मुझे भी क्या पुत्र को छोड़ने का मन हो सकता है ? लेकिन जब सारे कुल का प्रश्न सामने हो, तो मैं थोड़ी देर के लिए अपने हृदय को पत्थर बनाकर भी त्याग करने को तैयार हूँ।" गांधारी बोली।

"देवी, त्याग करने की कोई ज़रूरत नहीं है। ये ब्राह्मण तो अपना माहात्म्य बढ़ाने के लिए ऐसी ही बातें बनाया करते हैं। उससे अपनेको नहीं घबराना चाहिए! ब्राह्मणों से कहो कि कौरव-कुल के ऊपर अगर कोई आफ़त आती हुई मालूम पड़ती है, तो उसके निवारण के लिए मन्त्र, जप, त्याग, यज्ञ जो कुछ करना हो करो, दक्षिणा दो और जितनी चाहिए उतनी देव-पूजा करो। कुरुकुल के ऊपर अगर संकट आने जैसा हो तो उसकी निवृत्ति के लिए और जो कुछ करना हो भली भाँति करो।" धृतराष्ट्र बोले।

"अगर आपकी ऐसी इच्छा है तो ऐसा ही सही।"

"और अब आगे से त्याग करने का नाम भी मत लेना। मेरे इस पुत्र को मेरे पास ले आओ। मेरी आँखें तो हैं नहीं कि इसे देख सकूँ। लेकिन उसके कोमल शरीर पर हाथ फेरकर ही मैं सुखी हो लूँगा।" धृतराष्ट्र ने कहा।

: २ :

चंडाल-चौकड़ी

"हस्तिनापुर के राजमहल की एक छत पर दुर्योधन घूम रहा था। दूरी पर यमुना नदी का पानी तेज़ी से वह रहा था। थोड़ी ही देर बाद शकुनि, दुःशासन और कर्ण भी आ पहुँचे।"

"क्यों दुर्योधन, किस विचार में पड़े हुए हो!" छत पर बैठते हुए शकुनि ने पूछा।

शकुनि के शब्द दुर्योधन के कानों से टकराकर वापस आगये।

"मालूम होता है किसी भारी चिन्ता में पड़े हैं।" शकुनि गुनगुनाया।

"भाईसाहब, देखिए!" दुःशासन ने दुर्योधन के कन्धे पर हाथ रखकर कहा। "ये मामा और कर्ण आये हुए हैं।"

"आइए मामा।"

"क्यों किसी गहरे विचार में पड़े हुए हो? सामने क्या देख रहे थे?"

"अपनी जीवन-कथा।"

"यानी? उस पानी पर तेरी जीवन-कथा लिखी हुई है?"

"हाँ, उस पानी पर लिखी हुई; सामने के पेड़ों पर लिखी हुई है; इस ऊपर के अनन्त आकाश में लिखी हुई है; और सबसे

ज़्यादा साफ़-साफ़ तो मेरे अन्तर में लिखी हुई है।" दुर्योधन धीरे-धीरे बोला।

"महाराज निराश जैसे हो गये हैं तभी ऐसी बातें कर रहे हैं?" कर्ण बोला।

"हाँ, अब निराश तो मैं इतना हो गया हूँ कि इस निराशा में से अब आशा का ज़रा-सा भी अंकुर उगने की आशा नहीं रही है।" दुर्योधन ने कहा।

"दुर्योधन, तुमने तो सारे मानव-समाज पर ही कूँची फेर दी। अरे भाई, निराशाओं में से ही तो आशा का जन्म होता है। मनुष्य जब एकदम निराश हो जाता है तब तो इस शरीर को छोड़कर आत्मा भी अपना रास्ता नाप लेती है।" शकुनि बोला।

"तब तो मेरा भी ऐसा ही होगा। अब जीवन का कुछ भी प्रयोजन नहीं रहा।" दुर्योधन निराश होकर बोला।

"महाराज, यह आप क्या कह रहे हैं? कल सुबह ही तो आप चक्रवर्ती राजा होनेवाले हैं और सब जगह आपको आनंद ही आनंद दिखाई देगा।" कर्ण बोला।

"कर्ण, बुरा मत मानना। घोड़े का चाबुक पकड़ते-पकड़ते जो एकदम अंगदेश का राजा हो जाय वह मेरे दुःख की कल्पना ही नहीं कर सकता।" दुर्योधन की आँखें गुस्से से लाल हो रही थीं।

"लेकिन दुर्योधन, अभी हमने प्रयत्न करना कहाँ छोड़ दिया है?" शकुनि ने कहा।

"मुझे यही तो खटकता है। हम लोगों ने कितने-कितने

प्रयत्न किये, लेकिन एक में भी सफल नहीं हुए। तुम देख रहे हो? यह यमुना नदी का पानी मुझे देखकर हँसता है। भीम को ज़हर खिलाकर हम लोगों ने गंगा में डुबो दिया, लेकिन वह तो पाताल में से और भी ज्यादा मजबूत बनकर निकला। ऐसा है हमारा प्रयत्न!" दुर्योधन बोला।

"पर किसी समय अपना दांव उलटा भी तो पड़ सकता है न!"

"किसी समय नहीं, मेरे तो सारे ही प्रयत्नों में उलटे दाँव पड़े हैं मामा! तुम्हारे कहने से मैंने लाख का मकान तैयार कराया और पांडवों को जला देने के लिए पुरोचन को वहाँ भेजा। फिर भी पांडव जले तो नहीं, उलटे द्रौपदी को प्राप्त कर लिया और ज्यादा शक्तिशाली बनकर यहाँ आगये।" दुर्योधन बोला।

"अब इन गई-गुजरी बातों को याद करने से फायदा?"

"मामा, तुम्हारे मन से ये गई-गुजरी होंगी। लेकिन मेरे मन तो ये सब बातें इतनी ताज़ा हैं कि मानों आज ही मेरे सामने हुई हों। ये मेरे अंतर को मानों अंदर-ही-अंदर कुतर रही हैं। वह सामने का नदी के ऊपर का काला बादल मुझे कह रहा है कि "दुर्योधन, तू चाहे जितना पुरुषार्थ करले! अंत में तो तेरी पराजय ही है।"

"तो तू ऐसा मानता है कि पुरुषार्थ व्यर्थ है? अरे अगर पुरुषार्थ व्यर्थ होता तो पांडव आज इस महल में मौज उड़ाते और दुर्योधन तथा भानुमती वल्कल पहनकर द्वैत वन में भटकते होते।

यह तुम निश्चयपूर्वक समझो कि जो भाग्य की बातें किया करते हैं उनका दिमाग रोगी होगया है।" शकुनि ने ज़ोर देकर कहा।

"चाहे जो हो, मुझे तो अपने जीवन में यही अनुभव हुआ है कि पांडवों को कुचलने के हमने ज्यों-ज्यों प्रयत्न किये हैं त्यों-त्यों दैव ने उनकी ही सहायता की है। राजसूय यज्ञ में तो, मामा, तुम थे ही नहीं। जब शिशुपाल ने श्रीकृष्ण के पूजन के खिलाफ आपत्ति की उस समय थोड़ी देर के लिए तो मेरे मन में ज़रूर यह विचार आया कि चलो अब इस समय तो इस यज्ञ में बाधा पड़ेगी और यह असफल होगा। लेकिन इतने में तो शिशुपाल का सिर ही धड़ पर से अलग जा गिरा और यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ।" दुर्योधन बोला।

"फिर वही गई-गुजरी बातें! पर ज़रा देख तो कि आज वे सब लोग जंगल में भटक रहे हैं! अब तुझे चिंता किस बात की है?" शकुनि ने पूछा।

"चिंता तो जबतक ये लोग जिंदा रहेंगे तबतक रहेगी ही मामा। सुनो! जंगल में पांडवों को शाप देने के लिए हम लोगों ने दुर्वासा को हज़ारों शिष्यों के साथ भेजा, लेकिन पता नहीं क्यों, दुर्वासा और उनके शिष्य वापस चलते बने।" दुर्योधन ने कहा।

"खयाल तो ऐसा ही था कि असमय में ही दुर्वासा पांडवों की झोंपड़ी में जावेंगे और भोजनातिथ्य न मिलने पर शाप से उन लोगों को भस्म कर देंगे।" दुःशासन बोला।

"बात ही ऐसी है। जब हम कोई बात सोचते हैं तब उस

समय तो ऐसी मालूम होती है अब पूरी पड़ी। लेकिन कौन जाने कहाँसे उन युक्तियों में से भी पांडवों को बच निकलने का रास्ता मिल जाता है और हमारी सारी मेहनत फिजूल हो जाती है?" दुर्योधन बोला।

"ऐसा ही है। देखो न, हमने जयद्रथ को द्रौपदी का हरण करने के लिए भेजा था..........." दुःशासन ने बोलना शुरू किया।

"और खुद ही पकड़ा गया।" कर्ण ने बात को खत्म करते हुए कहा।

"और मामा, जब हम सब गंधर्वों के साथ लड़ रहे थे तब भाई साहब को पांडवों ने ही जाकर छुड़ाया।" दुःशासन ने कहा।

"मामा, ये सब बातें एक-एक करके जब मेरे स्मृतिपटल पर खड़ी होती हैं तब मेरे शरीर के रोयें खड़े हो जाते हैं, शरीर से पसीना निकलने लगता है और खून पानी हो जाता है।"

"ऐसा होना स्वाभाविक है। लेकिन हिम्मत हारने की जरूरत नहीं।" शकुनि ने कहा।

"मामा, आप पहले थोड़ी देर के लिए कुरुराज धृतराष्ट्र के पुत्र होजाओ तब मेरी मनःस्थिति को अनुभव कर सकोगे। और फिर क्या सलाह देना यह भी आप जान जाओगे।" दुर्योधन चिढ़ गया।

"जो होगया उसके लिए शोक करके, उस बात को लेकर, उसपर चिपटे रहना यह आदमी के कमजोर मन की निशानी है।

जो होगया सो होगया। अब आगे कल क्या करना है उसका विचार बुद्धिमान आदमी करते हैं।"

"आनेवाला कल आज ही का तो बनाया है। बीते हुए कल को भूलकर आनेवाले कल का विचार करनेवाला बिलकुल मूर्ख है। मामा, आपको चाहे जैसा दिखाई देता हो लेकिन मुझे तो दीये की तरह साफ़ दिखाई देता है कि हमारी सारी युक्ति और प्रयुक्तियों का अब दिवाला निकल चुका है।" दुर्योधन ने साफ़-साफ़ कहा।

"तो फिर हाथ-पैर जोड़कर छत पर बैठे-बैठे नदी के प्रवाह को देखा करो और बीते हुए दिन का खयाल किया करो। बस, तुरन्त ही साम्राज्य आसमान में से उतरकर दुर्योधन की गोदी में आजायगा।" शकुनि ने सिर खुजलाते हुए कहा।

"मिल गया साम्राज्य ऐसा करने से।" दुःशासन से न रहा गया।

"साम्राज्य तो मिलेगा तलवार की धार से!" कर्ण बोला।

"तुम सब लोग झूठे हो। कर्ण, बुरा न मानना। विराट् के युद्ध के मैदान में जब अकेला अर्जुन गायों के झुण्ड में से शेर की तरह आया तब तुम्हारी तलवार की धार कहाँ चली गई थी? तुम सब लोग बस हाँ में हाँ मिलानेवाले हो।" दुर्योधन क्रोध से बोला।

"महाराज, आपकी हाँ, में हाँ, मिलाने का तो कोई सवाल है नहीं।"

"तब फिर कौन-सा सवाल है? पाण्डवों को जब वन में भेजा उस समय हम लोग यह खयाल करते थे कि तेरह वर्ष के

अन्दर तो हम लोग अच्छी तरह से जम जमा जावेंगे। लेकिन ये तेरह वर्ष भी पूरे हुए और कल तो पाँचों पाण्डव और द्रौपदी को मैं हस्तिनापुर के दरवाज़े में घुसते हुए देखता हूँ।" दुर्योधन बोला।

"हस्तिनापुर के दरवाज़े केवल लकड़ी के ही नहीं बने हुए हैं।" कर्ण बोला।

"सिर्फ़ लकड़ी के क्या घास के भी नहीं बने हुए हैं। विराट् के मैदान में एक छःह वर्ष के बालक ने हमारे कपड़ों को उतार लिया। उस दिन हमारी तलवारें काठ की थीं या घास की?" दुर्योधन बोल उठा।

"अब कुछ करना-धरना है या नहीं? अगर तेरी इसी प्रकार की इच्छा है तो हम सब लोग अपने-अपने घर चले जाते हैं और तुम्हें जैसा अच्छा लगे वैसा करो। दुःशासन, चलो उठो।" शकुनि ज़रा गरम हुआ।

"कहाँ जाते हैं चलकर?"

"क्यों? अब हमारा तो कोई काम रहा नहीं इसलिए जाते हैं।"

"अब तो हम चारों आदमी एक साथ ही जावेंगे। आजतक मैं आपकी ही सलाहों पर चला हूँ, और आज जब मुझे मार्ग नहीं दिखाई दे उस समय मैं आपको कैसे जाने दूँ? अब तो मैं भी गिरूँगा और आपको भी गिराऊँगा।" दुर्योधन बोला।

"तभी तो मज़ा आवेगा। तू जब हिम्मत हार जाता है तब मुझे अच्छा नहीं लगता। इस साम्राज्य प्राप्त करने के प्रयत्न ही में तो मज़ा है।" शकुनि बोला।

"मामा, सच कहता हूँ। पांडवों को वश में करने के आज-तक के मेरे तमाम प्रयत्न निष्फल हुए हैं। इन सब बातों पर जब मैं आज नज़र डालता हूँ तो ऐसा मालूम होता है कि पुरुषार्थ को भी जगत् में सफल होने के लिए किसी दूसरे तत्त्व की ज़रूरत होती है। अकेला पुरुषार्थ ही काफ़ी होता तो पांडव कभीके ख़त्म हो गये होते! लेकिन मामा! तुम्हारी इस गिनती में वही कोई एकाध अंक कम पड़ जाता है और वह सारे हिसाब को ग़लत कर देता है!" दुर्योधन बोला।

"तो अब करना क्या है, इसका ही विचार करो न?" कर्ण बोला।

"विचार क्या करना है? जो मामा का विचार वही सबका विचार।" दुःशासन बोला।

"मामा, आप सब बात जानते हैं। पांडव, विराट के यहाँ प्रकट तो हो ही गये हैं। विराट की सभा में उन्होंने द्रुपद्र वग़ैरा को इकट्ठा किया है। अब वे राज्य के लिए अपनी मांग भी पेश करेंगे ही, इसमें कोई संदेह ही नहीं।" दुर्योधन ने बताया।

"ठीक बात है।"

"तब फिर हमें क्या करना चाहिए?"

"दुर्योधन जिस प्रकार कहे उसी प्रकार से पांडवों को राज्य सौंप देना चाहिए और तुम सब अपनी-अपनी रानियों को लेकर द्वैत वन में चले जाओ। मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा और तुम

लोगों को वहां पहुँचाकर सीधा गांधार देश चला जाऊँगा।" शकुनि ने ताना दिया।

"पांडवों को राज्य देदूँ? "दुर्योधन गरज कर बोला," मैं ऐसा ही क्या तुम्हारा कच्चा-पक्का भानजा हूँ, क्यों?"

"अगर मेरा भानजा है तो जिंदा रहते कोई प्रयत्न न छोड़े और ऐसी युक्तियाँ खोजे कि खुद ईश्वर भी चकित हो जाय और कहे कि हाँ, यह भी कोई है। अगर तिसपर भी सफल न हो सके तो हँसते-हँसते निष्फल हो जाय और धूल को झटक-कर खड़ा हो जाय। मेरा भानजा तो ऐसा ही होता है।" शकुनि ने समझाया।

"तो मामा, पांडवों का खात्मा हो जाय ऐसा कोई मार्ग अभी भी खोज निकालो न? मैं उसके लिए सब कुछ करने को तैयार हूँ।"

"तो देख, पांडव अपना राज्य मांगेंगे।"

"मैं नहीं दूँगा।"

"वे लोग तुम्हारे बाप के पैरों पड़ेंगे।"

"मैं नहीं देने दूँगा।"

"लेकिन ये भीष्म और द्रोण शांति और न्याय की सलाह देंगे।"

"भीष्म और द्रोण को तो मैंने कभीका खरीद रक्खा है। उन्हें सच बोलने का संतोष मिल जाय इसलिए मैं उनको उनकी मर्ज़ी के अनुसार बोलने भर देता हूँ। बाकी हैं तो वे हमारे ही पक्ष में, यह निश्चय समझना।" दुर्योधन ने कहा।

"पांडव जब राज्य मांगेंगे तब तुम्हारे बाप को समझावेंगे, धर्म की बातें कहेंगे और अंत में श्रीकृष्ण से भी कहलाये बग़ैर नहीं रहेंगे।" शकुनि बोला।

"श्रीकृष्ण भले ही आवें। लेकिन उनसे कैसे निबटना यह मामा आपको बताना होगा।" दुर्योधन बोला।

"इसमें सिखाने या बताने की कोई बात नहीं है। तू तो बस एक ही बात को लेकर अड़ जाना और पांडवों को एक सूत भी ज़मीन न देने का हठ पकड़ लेना। धृतराष्ट्र देने के लिए कहें तो तुम यह कहना कि अगर आप मुझपर ज़ोर डालेंगे तो मैं मर जाऊँगा। अंतिम रूप से जब तू यह जता देगा तो तेरा बाप तेरे सामने बिलकुल ग़रीब हो जायगा।" शकुनि ने युक्ति बतलाई।

"यह तो मैं ज़रूर करलूँगा।"

"तब तो बस बेड़ा पार है।"

"अगर फिर लड़ाई हुई तो?" दुर्योधन बोला।

"ये सब लड़ाई-बड़ाई की बातें झूठी हैं। पांडवों को अगर लड़ना होता तो कभी के लड़ लिये होते। उनको लड़ना नहीं है। वे तो सिर्फ़ लड़ाई के नाम से तुम लोगों को डराते हैं।" शकुनि बोला।

"नहीं-नहीं! मुझे लगता है कि ये लोग अब लड़े बिना नहीं रहेंगे।"

"तू नहीं जानता। ये तुम्हारे भीष्म-द्रोण एक दिन में सारी पृथ्वी को भस्म करदें ऐसे हैं। क्या ये बातें पांडव नहीं जानते?

जानते हैं, तभी तो वे लोग लड़ाई नहीं करते हैं। तुम अपने इन दोनों आदमियों को अपने पक्ष में रख लोगे तो समझना कि फिर बेड़ा पार है।" शकुनि ने कहा।

"ये लोग तो मेरी जेब में ही हैं।"

"तो तुम बिलकुल दृढ़ रहो और अपने पिता को भी दृढ़ रक्खो। और इन थोड़े दिनों में पांडव क्या करते हैं यह देखने के बाद हम लोग आगे का कार्यक्रम निश्चित करेंगे।" शकुनि बोला।

"अच्छा मामा! आप विचार तो कर रखना। मालूम होता है अब हम लोग ज्यादा राह नहीं देख सकेंगे।"

"राह देखने की तो ज़रूरत ही नहीं। और तुम्हें जल्दी करने की भी ज़रूरत नहीं। अभी तो ये लोग क्या करते हैं यह देखना चाहिए।" शकुनि बोला।

बात ही बात में रात ज्यादा बीत गई थी। आसपास के मैदान में पक्षीगण शांत हो गये थे। उल्लू बीच-बीच में, उस शांति में कहीं-कहीं पक्षियों का संहार करके खलल मचा रहे थे।

हस्तिनापुर की चंडाल-चौकड़ी शून्य आकाश में अपना भविष्य देखती-देखती विदा हुई।

: ३ :

युद्ध की तैयारी

"क्यों दुःशासन, मामा को बड़ी देर लग गई ?" दुर्योधन बोला।

"मुझसे तो यह कहा था कि, कर्ण को लेकर मैं अभी आता हूँ। पर यह लो, वह आ ही रहे हैं।" दुःशासन ने जवाब दिया।

"महाराज दुर्योधन की जय हो !" कमरे में घुसते ही शकुनि बोला।

"महाराज दुर्योधन की जय हो !" कर्ण ने भी जयजयकार किया।

"क्यों मामा, यह नया मज़ाक कबसे खोज निकाला ?" दुर्योधन ने पूछा।

"यह दिल्लगी नहीं बल्कि एकदम सत्य है।" कर्ण ने गंभीरता से कहा।

"दुर्योधन, अब इन बातों को जाने दो। तुम कर क्या आये, यह कहो ?" शकुनि ने पूछा।

"इस बारे में तो भाई साहब की सचमुच ही विजय है, मामा !" दुःशासन फूल गया।

"क्या हुआ ?" कर्ण ने पूछा।

"यह तो भाई साहब के मुँह से ही सुनोगे तो ही मज़ा आवेगा।"

"बोलो भाई साहब, तुम ही कहो," शकुनि ने कहा।

"मामा, मैं द्वारिका पहुँचा तो उसी समय भीमसेन का भाई अर्जुन भी वहाँ आपहुँचा।" दुर्योधन बोला।

"यह तो बड़ा अपशकुन हुआ।" शकुनि बोला।

"मामा, तुम भूलते हो। मुझे पहले तो ऐसा मालूम पड़ा, लेकिन अंत में तो यह अपशकुन शकुन में बदल गया!" दुर्योधन बोला।

"ऐसी बात! तो एक बार शुरू से सब कह डाल कि क्या क्या हुआ।" शकुनि बोला।

"अर्जुन द्वारिका पहुँचा तो सही, लेकिन मैं उसकी तरफ ध्यान दिये बगैर ही सीधा श्रीकृष्ण के महल में चला गया।" दुर्योधन ने कहा।

"फिर?"

"श्रीकृष्ण सो रहे थे इसलिए मैं तो उनके सिरहाने की ओर एक बड़ा और अच्छा-सा आसन बिछा हुआ था उसपर जाकर बैठ गया।" दुर्योधन मुसकराया।

"फिर?"

"फिर थोड़ी देर बाद वहाँ अर्जुन भी आया।" दुर्योधन ने बात चलाते हुए कहा।

"भाईसाहब पहले पहुँच गये यह अच्छा हुआ।" दुःशासन बोला।

"फिर अर्जुन कहाँ बैठा ?" कर्ण बोला।

"बैठता कहाँ ? श्रीकृष्ण के सिरहाने तो मैं ही बैठा हुआ था इसलिए अर्जुन श्रीकृष्ण के पैताने खड़ा रहा।" दुर्योधन बोला।

"तू श्रीकृष्ण के सिरहाने बैठा और अर्जुन श्रीकृष्ण के पैताने के पास खड़ा रहा; तब तो तुम्हारे शकुन अच्छे हुए ऐसा समझना चाहिए। अच्छा फिर ?" शकुनि बोला।

"फिर थोड़ी देर बाद श्रीकृष्ण जागे और उठकर बैठ गये।"

"याने...... ।"

"याने यह कि अर्जुन ने उनको नमस्कार किया।"

"और भाई साहब, आपने ?"

"उन्होंने अर्जुन को ही पहले देखा। अर्जुन के साथ थोड़ी-सी बातें की तबतक उनको तो मालूम ही नहीं पड़ा कि मैं भी वहाँ बैठा हूँ।"

"अच्छा ?"

"जब वह ज़रा मुड़े तो मैं उनको दिखाई दिया। तब तो श्रीकृष्ण अपने पलंग पर से नीचे उतरकर मुझ से मिले और मुझे अपने पलंग पर बैठाया।" दुर्योधन बोला।

"और अर्जुन को ?"

"अर्जुन तो नीचे ही खड़ा रहा।"

"यह तो ठीक, लेकिन अब खास बातों पर आओ ?" शकुनि उतावला होरहा था, "श्रीकृष्ण ने हम लोगों को कितनी मदद दी ?"

"मामा, यह सब मैं कहता हूँ। मैं जो कुछ कह रहा हूँ वे सब खास बातें ही हैं। उसके बाद श्रीकृष्ण ने मुझसे आने का कारण पूछा, और अर्जुन से भी पूछा।"

"अर्जुन ने क्या कहा?"

"दोनों के आने का कारण स्पष्ट था। हम दोनों ही श्रीकृष्ण से सहायता लेने गये थे।" दुर्योधन बोला।

"तब तो श्रीकृष्ण विचार में पड़ गये होंगे।" कर्ण बोला।

"पड़े ही होंगे। मैंने तो समझाया, कि आप हमारे संबन्धी हैं, और महाराज धृतराष्ट्र के मित्र हैं। इसलिए हमारी मदद करनी चाहिए।" दुर्योधन बोला।

"ठीक कहा। अर्जुन क्या बोला?" शकुनि ने पूछा।

"अर्जुन ने तो सिर्फ एक ही बात कही, मैं आपकी सहायता चाहता हूँ।"

"तेरह वर्ष वन में भटककर पांडव बेचारे भिखारी जैसे दीन बन गये मालूम होते हैं। अच्छा तो फिर?" कर्ण बोला।

"फिर श्रीकृष्ण थोड़ी देर विचार करके बोले, मुझे तो तुम दोनों की सहायता करनी है, यह तो निश्चय ही है। मैंने ऐसा निश्चय किया है कि तुम्हारे इस युद्ध में मैं शस्त्र नहीं ग्रहण करूँगा। एक ओर शस्त्रास्त्र-रहित मैं अकेला रहूँगा और दूसरी तरफ़ शस्त्रास्त्रों में प्रवीण मेरी अक्षौहिणी यादव सेना रहेगी। इन दो में से जो भी तुम लोगों को पसन्द हो, एक-एक को पसन्द करलो! पहली पसन्दगी अर्जुन करेगा।"

"पहली पसन्दगी अर्जुन किसलिए करेगा ?" शकुनि की आँखें फट पड़ीं।

"पहले तो भाई साहब आप पहुँचे थे न ?" दुःशासन से रहा नहीं गया।

"यह प्रश्न तो मैंने वहीं-का-वहीं उठाया था। लेकिन श्रीकृष्ण कहने लगे, "मैंने अर्जुन को पहले देखा है और दूसरी बात यह है कि तुम दोनों में अर्जुन छोटा है इसलिए पहली मांग मैं अर्जुन को देता हूँ।"

"मैं इसीलिए कहता था कि यह अपकुशन ही हुआ।" शकुनि बोला।

"लेकिन मामा, पूरी बात तो सुनो।" दुर्योधन बोला।

"अच्छा फिर अर्जुन ने क्या मांगा, यह सुनने लायक़ है।" दुःशासन ने कहा।

"अर्जुन ने बगैर शस्त्रास्त्र के सिर्फ़ श्रीकृष्ण को ही मांगा।" दुर्योधन बोला।

"अकेले श्रीकृष्ण को ही !" शकुनि को आश्चर्य हुआ।

"हाँ, अकेले श्रीकृष्ण को। और यह बिलकुल तय हो गया है कि इस लड़ाई में श्रीकृष्ण खुद नहीं लड़ेंगे, इतना ही नहीं बल्कि वे हाथ में शस्त्र भी नहीं लेंगे।" दुर्योधन बोला।

"और तुमने क्या मांगा ?"

"फिर मेरे लिए तो मांगने का कुछ रहा ही नहीं। मेरे हिस्से में तो सारी यादव सेना आगई।" दुर्योधन आनन्द में आकर बोला।

"अर्जुन को पहले माँगने का मौक़ा मिला तो भी उसने अकेले श्रीकृष्ण को ही माँगा ! और श्रीकृष्ण लड़ाई में शस्त्र भी नहीं लेंगे ? यह जानते हुए भी अर्जुन ने उनको माँगा। और लड़ाई में लड़नेवाली और अपना प्राण देनेवाली सेना तुझे मिली ?" शकुनि का कुछ समाधान नहीं हो रहा था, इस कारण उसने प्रश्न-परम्परा शुरू की।

"मामा, इसमें इतना विचार क्या करना है ?" दुर्योधन बोला।

"यह सारा रहस्य मेरी समझ में नहीं आता। क्या वनवास के कारण अर्जुन इतना मूढ़ बन गया है कि एक छोटा-सा बालक समझ जाय ऐसी बात भी वह नहीं समझ सका और तुझे सारी सेना दे दी ?" शकुनि बोला।

"मामा, मुझे तो मालूम होता है कि इस समय अर्जुन अपनी बुद्धि खो बैठा है। मुझे तो लगता है कि इस लड़ाई में पाण्डव ज़रूर हारनेवाले हैं।" दुर्योधन की वाणी में निश्चय था।

"शकुनि मामा जैसा कहते हैं वैसे ही मेरी भी समझ में यह बात नहीं आती। लेकिन अर्जुन ने श्रीकृष्ण को शायद अपना रथ हाँकने के लिए लिया हो तो ?" कर्ण गुत्थी सुलझाने का प्रयत्न करने लगा।

"मानलो कि अपना रथ हाँकने के लिए ही लिया हो; लेकिन जो काम कि एक मामूली आदमी कर सकता है उसके लिए सारी यादव-सेना को छोड़ देना बुद्धि का दिवाला नहीं तो और क्या है ? मैं तो यही कहता हूँ कि पाण्डवों ने आज अपनी बुद्धि का दिवाला

निकाल दिया है और यही हम लोगों के लिए अच्छे शकुन हैं।" दुर्योधन बोला।

"शकुन तो जो हो वह ठीक ही है। लेकिन यह सारी बात मेरी समझ में नहीं आती। खैर, अब हमें अपनी तैयारी तो करनी ही चाहिए।" शकुनि बोला।

"पाण्डव तो उपप्लव्य के पास डेरा डाले पड़े हुए हैं। उनके पास सात अक्षौहिणी ही सेना इकट्ठी हुई है और अपने पास ग्यारह अक्षौहिणी सेना होगई है। इसलिए मैं इस युद्ध में स्पष्ट रूप से पाण्डवों की हार देख रहा हूँ।" दुर्योधन बोला।

"तो अब क्या देर है?"

"देर तो अब इसलिए है कि आज सुबह ही समाचार मिले हैं कि श्रीकृष्ण स्वयं हस्तिनापुर आ रहे हैं।" दुर्योधन ने कहा।

"ऐसी बात है? मालूम होता है बेचारे अर्जुन ने सलाह-मशविरे के लिए ही श्रीकृष्ण को पसन्द किया होगा।" कर्ण बोला।

"कृष्ण यहां आ रहे हैं!" शकुनि ने कहा।

"मामा, इसमें घबराने की क्या बात है?" दुर्योधन को शकुनि की शंका अनुचित दिखाई दी।

"कारण तो कोई नहीं है, लेकिन मैं कुछ डर रहा हूँ। न जाने क्यों, पर मुझे भय है कि श्रीकृष्ण दुर्योधन को कहीं फँसा मारेंगे।" शकुनि बोला।

"मामा, मुझे? अब आप ऐसी आशा न रक्खें।"

"लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि तुझे फँसावेंगे, तेरे बाप को

समझावेंगे, डरावेंगे, भीष्म-द्रोण को उलटी-सीधी पट्टी पढ़ावेंगे और सबको इकट्ठा करके तुझे शर्मिन्दा करेंगे।" शकुनि बोला।

"मामा, इस बात की बिलकुल फिक्र मत करो। पिताजी को फँसना हो तो खुशी से फँसें, भीष्म और द्रोण को न लड़ना हो तो वे खुशी से न लड़ें, जिसको जाना है वह भले ही चला जाय। मैं अकेला ही लड़ूँगा। मेरा कर्ण लड़ेगा। अब किसीकी ताक़त नहीं कि मुझे इस युद्ध से रोक सके।" दुर्योधन बोला।

"तू भले ही जैसा तुझे अच्छा लगे वैसा कह। लेकिन मुझे जो डर है वह मैंने फिर कह दिया कि यह कालिया (कृष्ण) आ रहा है तो यों ही नहीं आ रहा है। उसके मन में न जाने कितनी बातें भरी होंगी।" शकुनि बोला।

"मामा, अब आप व्यर्थ में ही ऐसा सोच-विचार करते हैं। अब श्रीकृष्ण की या आपकी किसी युक्ति-प्रयुक्ति का समय रहा ही नहीं। अब तो सीधी लड़ाई का ही मामला है और उसमें श्रीकृष्ण का कुछ भी चलनेवाला नहीं।" दुर्योधन निश्चयपूर्वक बोला।

"तुम सोच-समझकर चलना। अगर उस कृष्ण के जाल में फँस गये तो मर ही गये समझना।" शकुनि बोला।

"भाई साहब मुझे तो एक ही सीधा-सादा उपाय सूझता है और वह यह कि कृष्ण जो भी कहें उस सबका जवाब एक सिर्फ नन्ने से ही देना। बस फिर मामला साफ़ है।" दुःशासन बोला।

"खुद अकेला पांडवों के साथ रहेगा और सारी यादव

सेना तुम्हें दे दी है। इसमें भी मुझे तो धोखा ही मालूम पड़ता है। कहीं लड़ाई के समय यह सारी यादव सेना पांडवों की ओर न चली जाय ?" शकुनि बोला।

"मामा, ऐसा गजब तो कोई भी नहीं कर सकता, तो क्या श्रीकृष्ण करेंगे ?" दुर्योधन ने पूछा।

"मुझे उसपर तो ज़रा भी भरोसा नहीं है। पांडव चाहे कितने ही नीच हों, लेकिन ऐसा नहीं करेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है; लेकिन कृष्ण के बारे में ऐसा मैं नहीं मान सकता।" शकुनि बोला।

"मामा, ऐसा हो नहीं सकता। अब मैं तो जाता हूँ। कल श्रीकृष्ण आवें उसके पहले पिताजी से मिल लेना चाहता हूँ, सो जाकर मिललूँ।" दुर्योधन बोला।

"अच्छा, कल की सभा में मैं तो आऊँगा नहीं। मेरा वहां काम ही क्या है ?" शकुनि बोला।

"लेकिन मामा, आपकी सलाह की तो भाई साहब को ज़रूरत होगी न ?"

"सलाह तो यही है कि किसी तरह भी पांडवों से संधि नहीं करना। संधि करने के लिए जरा हाँ कहा या जरा-सी भी इच्छा दिखाई कि बस मौत ही समझो। लड़ाई के सिवा दूसरी बात ही मत करना। तुम सब लोगों को अगर ज़िन्दा रहना है तो इस लड़ाई में पांडवों को खत्म करदो और फिर सुख से राज्य करो। पांडवों को मारने के लिए मैंने अपने सब दाँव-

पेंच लगाकर देख लिये हैं और यह आखिरी दांव है।" शकुनि बोला।

"वैसे तो महाराज दृढ़ हैं ही। चलो अब हमें चलना चहिए।" कर्ण बोला।

—और चंडाल-चौकड़ी विदा हुई।

: ४ :

संधि के समय

"दुर्योधन, सच कहता हूँ, तुम इतने दृढ़ रहोगे, इसकी मैंने कल्पना नहीं की थी।" शकुनि बोला।

"मामा, क्या कहूँ? मैं तो आजतक यही समझता आया कि चालाकी में तो आप ही होशियार हैं! लेकिन मामा, श्रीकृष्ण की चालाकी तो तुमसे भी चढ़ जाती है। उनकी बोल-चाल, उनके हाव-भाव, सब बड़े-बड़ों को भी भुलावे में डाल देनेवाले होते हैं।" दुर्योधन बोला।

"लेकिन भाईसाहब, आप शुरू से जमाकर बात करें न?"

"हाँ, अब शुरू से लेकर अबतक की सब बातें हमें बताओ।" कर्ण बोला।

"श्रीकृष्ण पाण्डवों की ओर से संधि की चर्चा करने आये थे। उनका दिखावा ही ऐसा भव्य था कि अगर कोई कच्चा-पोचा आदमी होता तो खत्म ही होजाता। ऊँचे कान वाले चार बड़े-बड़े घोड़े, मेघ के समान नाद करनेवाला गंभीर रथ, चालाक सारथि और अन्दर खुद थे। गले में मनोहर माला, विशाल उनकी आँखें और भव्य ललाट। उनके रथ के आसपास कितने ही लोग उनकी वाणी सुनने के लिए आतुर-से हो रहे थे। उनकी ऐसी

शान देखते ही पितामह और द्रोण तो उनके पैरों में पड़ गये।" दुर्योधन बोला।

"भीष्म और द्रोण तो पड़ेंगे ही, लेकिन तू और कर्ण भी पड़े क्या?" शकुनि ने कहा।

"हां, श्रीकृष्ण को देखकर थोड़ी देर के लिए तो मुझे भी ऐसा लगा कि इस युद्ध में अपना विनाश ही है।" कर्ण बोला।

"तुम कृष्ण की अगवानी के लिए नहीं गये थे क्या?"

"अरे नहीं! उलटे श्रीकृष्ण ही मुझसे मिलने के लिए मेरे महल में आये थे।" दुर्योधन बोला।

"तुमसे उसने क्या कहा?"

"मुझे समझाने के लिए उसने कितने ही आदमी खड़े कर दिये। मुझे भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, विदुर सभीने कहा; पिताजी ने भी बहुत कुछ कहा; मेरी माता ने भी कहा; और अन्त में श्रीकृष्ण ने भी कहा।" दुर्योधन बोला।

"इतने सारे आदमियों के साथ तुम टक्कर ले सके, यही मेरे लिए बहुत खुशी की बात है।" शकुनि बोला।

"मामा, ज्यों-ज्यों विचार करता जाता हूँ त्यों-त्यों मुझे हम लोगों का विचार ही सत्य लगता है। पांडव हम लोगों को डरा-कर अपना आधा हिस्सा प्राप्त कर लेना चाहते हैं। बाकी तो युद्ध करना उनके वस की बात नहीं मालूम होती।" दुर्योधन बोला।

"मैं तो कहता ही हूँ। ऐसे-ऐसे दूतों को भेजना और पंचायतें करना क्या लड़ाई के लक्षण हैं?" शकुनि बोला।

"आधा राज्य दो, चौथाई राज्य दो, पचास गांव दो, पच्चीस गांव दो, दस गांव दो, पांच गांव दो, एक गांव दो, ऐसी-ऐसी बातें करते हैं! और तिसपर भीष्म और द्रोण तो मुझे ही कहते रहते थे कि दुर्योधन, तुम नहीं समझोगे तो अब सबका काल ही आ रहा है।" दुर्योधन बोला।

"वे तो बूढ़े होगये हैं इसलिए उनको तो मौत ही दिखाई देती है; इस कारण ये लोग अपनी मौत को दूसरों के सिर पर डालकर जीने की आशा रख रहे हैं। काल तो उनका आया है।" शकुनि बोला।

"फिर तुमने उनको क्या जवाब दिया ?" दुःशासन ने बात जानने की उत्सुकता से पूछा।

"मैंने तो मिलते ही श्रीकृष्ण को आड़े हाथों लिया। कहा कि आपने विदुर के यहां भोजन किया और मेरे यहां नहीं। तटस्थ होते हुए भी आप ऐसा पक्षपात करते हैं ?" दुर्योधन बोला।

"कृष्ण ने तुम्हारे यहां भोजन नहीं किया, इसका तुझे बुरा लगा मालूम होता है। क्यों न ?" शकुनि ने मज़ाक किया।

"नहीं, यह बात तो बिलकुल नहीं थी। लेकिन उनके साथ जरा बातचीत करने का एक बहाना मिल गया।" दुर्योधन बोला।

"लेकिन खास बात क्या हुई ?"

"श्रीकृष्ण ने मुझे बहुत समझाया, धमकाया, भीम, अर्जुन को मेरे सामने रक्खा, द्रौपदी को सामने रक्खा, धर्म-अधर्म की बहुत-सी बातें कीं, थोड़ी-सी स्तुति भी की, एकता की बातें कीं, एकता के

गुण बताये और पांडवों की ओर से अंत में पांच गांवों की मांग पेश की।" दुर्योधन बोला।

"तुमने क्या जवाब दिया?"

"मैंने तो उनसे कह दिया कि सुई की नोक जितनी जमीन भी मैं पांडवों को नहीं देनेवाला हूँ।" दुर्योधन बोला।

"बहुत अच्छा जवाब दिया।" कर्ण बोला।

"सीधा और सादा। और अब जो कुछ लेना हो तो वह कुरुक्षेत्र के मैदान में ले लो। अब या तो दुर्योधन पृथ्वी का सम्राट् होगा या युधिष्ठिर होगा। या तो भानुमती ही पृथ्वी की रानी बनेगी या फिर द्रुपद की लड़की ही बनेगी। इन दोनों के बीच तीसरा कोई मध्यम मार्ग है ही नहीं।" दुर्योधन बोला।

"लेकिन कृष्ण क्या बोले?"

"बोलते क्या? वहाँ श्रीकृष्ण की हाँ में हाँ मिलानेवाले बहुत-से मौजूद थे। उन्होंने तो महाराज को ऐसी सलाह दी कि दुर्योधन को पकड़कर पाण्डवों के सुपुर्द कर दो तो कुरुकुल नष्ट होने से बच जायगा। माता गांधारी को भी यही सूझा था।" दुर्योधन बोला।

"फिर तुझे बांधा क्या?"

"अरे अब दुर्योधन को बाँधना सहज नहीं है। आज दुर्योधन के पीछे ग्यारह अक्षौहिणी सेना का बल है। वे दिन अब चले गये।" दुर्योधन बोला

"भाईसाहब तो सभा में से गुस्से होकर चले आये थे!"

"चला न आऊं ? ऐसा अपमान कहाँतक सहन करता रहूँ ? मैंने तो हम लोगों की सलाह के अनुसार श्रीकृष्ण को भी क़ैद कर लिया होता ।" दुर्योधन बोला ।

"हाँ, उसका क्या हुआ ? तुमने कृष्ण को क़ैद क्यों नहीं किया ?"

"भाईसाहब को दया आगई !"

"तैयारी तो उसको पकड़ने की सब कर रक्खी थी, लेकिन कृष्ण को सब मालूम हो गया इसलिए............।"

"मालूम होगया तो इससे क्या ?" दुःशासन बोला ।

"लेकिन वह तो अपना जाल फैलाने लगा न ? उन्होंने सब-की आंखों में ऐसी भुरखी डाल दी कि जितने लोग वहाँ थे उन सबको एक बड़ा-सा राक्षस जैसा शरीर दिखाई देने लगा । उसका मुँह आकाश में पहुँच गया और उसके पेट में कितने ही लोग समा जाने लगे । सभा में जो ऋषि मुनि आये हुए थे वे सब यह देखकर डर गये और स्तुति करने लगे ।" दुर्योधन बोला ।

"तुम डर गये थे क्या ?"

"नहीं तो, मुझे तो ऐसा कुछ भी दिखाई नहीं दिया । मुझे तो वह अपने जैसे दो हाथ और दो पैर वाले कृष्ण ही दिखाई दिये । लेकिन ये उनके भगत लोग बस उठ खड़े हुए, और उनमें भीष्म-द्रोण तो सबसे पहले थे । पिताजी बेचारे देख नहीं सकते इसलिए उनको तो विदुर काका जो कहें वही बात सच्ची थी ।" दुर्योधन बोला ।

"तब तो श्रीकृष्ण ने बड़ा ही गज़ब किया ?"

"इसमें ग़जब की क्या बात थी ? संधि की बात तो एक ओर रह गई और वह सारी सभा मानों कृष्ण का मंदिर बन गई। लेकिन मैं भी तो ऐसा पक्का था कि एक का दो नहीं हुआ।" दुर्योधन बोला।

"अब तू मेरा सच्चा भाञ्जा होगया।" शकुनि ने दुर्योधन की पीठ ठोंकी। "अब युद्ध होगा, यह निश्चित है। दुर्योधन, आज तक तो तुम दूसरों की बुद्धि के अनुसार चलते थे, लेकिन आज तुम अपनी बुद्धि के बल पर चलने लगे हो—यही उत्कर्ष का चिन्ह है।"

"तो मामा, अब तैयार हो जाओ। कर्ण, तुम भी तैयारी करो।"

"मुझे तो आप तैयार ही समझिए।"

"मामा, इस कर्ण को भी बहकाने को कृष्ण अपने साथ कुछ दूर ले गये थे!"

"कर्ण बहकाने में आनेवाला आदमी नहीं है। वह बहुत पक्का है।"

"मामा, मैंने तो सभा में साफ-साफ कह दिया है कि भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, ग्यारह अक्षौहिणी सेना आदि जिन-जिनको युद्ध में से चले जाना हो वे खुशी से निकल जायँ। मैं, मामा शकुनि, कर्ण, दुःशासन ये चार आदमी युद्ध कर लेंगे, और जिन्दा रहे तो राज्य भोगेंगे, नहीं तो क्षत्रियों की तरह स्वर्ग में जायँगे।" दुर्योधन बोला।

"तूने जो कहा वह बिलकुल ठीक है। क्यों कर्ण?"

"कर्ण तो आप ही के अधीन है। मैंने तो आपको कह दिया है कि हमारे सबके हित के लिए भीष्म जबतक सेना के आगे रहेंगे तबतक मैं पीछे रहूँगा। और फिर तो मैं हूं ही। महाराज, इस कर्ण ने अपनेको आपके हवाले कर दिया है, यही समझें।" कर्ण ने कहा।

"दुर्योधन, कर्ण जो कुछ कहता है वह बिलकुल ठीक है। तुम जाकर भीष्म को समझादो कि सेनापति तो आप ही होंगे। और भीष्म हां कर ही लेंगे। हमें भीष्म से काम है और इसी भीष्म के हाथों ही पांडवों का नाश करवाना है। यह बूढ़ा हमारे खूब काम आवेगा। यह है तबतक तो पांडवों की ताक़त नहीं कि हमें कुछ भी नुक़सान पहुँचा सके। लेकिन तुझे भीष्म को सम्हालना पड़ेगा।" शकुनि बोला।

"यह तो भाईसाहब को खूब आता है। यह जब गुस्सा करते हैं तब तो मैं भी दंग रह जाता हूं। देखो न, सभा में से जब यह गुस्सा होकर चले गये तब सबके मानों प्राण सूख गये थे और सब आपस में घुस-पुस करने लगे। और लोग तो सामनेवाले की मीठी-मीठी तारीफ़ करके उसको वश में रखने की कोशिश करते हैं, लेकिन भाईसाहब तो भीष्म जैसों को गुस्से में कठोर शब्द कहकर वश में रखते हैं। इसलिए इस बारे में भाईसाहब को कुछ सिखाने की ज़रूरत नहीं है।" दुःशासन ने कहा।

"तू भी यह विद्या अपने भाई से सीख ले न ?"

"इतना इसका हौसला अभी नहीं है !" दुर्योधन बोला।

"तो अब हमें विदा होना चाहिए।"

"अच्छा, कल सुबह हम लोग युद्ध के मैदान में मिलेंगे।"

"लेकिन सेनापति भीष्म ही हों ?"

"हाँ-हाँ, भीष्म ही। कर्ण दो दिन बाद ही सही, क्यों ?"

"हाँ, यही।"

—और चंडाल चौकड़ी फिर विदा हुई।

: ५ :

सेनापति पितामह के पास

महाभारत का युद्ध शुरू हुए आज पूरे आठ रोज होगये हैं। एक ओर से भीष्म और दूसरी ओर से धृष्टद्युम्न आमने-सामने की सेनाओं का संहार कर रहे हैं। तिसपर आज तो भीम और अर्जुन ने कौरव सेना के छक्के छुड़ा दिये। अर्जुन प्रलयकाल की अग्नि की तरह चारों ओर घूम रहा था और वृद्ध भीष्म को अपने वृद्ध होने की याद दिला रहा था। भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य वगैरा ने बहुत ही परिश्रम किया। पर आज तो कौरव सेना में गड़बड़ी मच ही गई और इसी भागदौड़ में कौरव सेना पर सूर्य अन्तिम निगाह डालकर अस्त हुआ।

महाराज दुर्योधन आज बहुत अस्वस्थ-से थे। युद्ध इतना लम्बा बढ़ेगा इसकी उनको उम्मीद न थी। रात को डेरे में जाकर वह पलंग पर लेट गये, लेकिन उनको नींद नहीं आई। आधी रात के समय वह उठे और सीधे भीष्म के तम्बू में गये।

"दुर्योधन, इतनी रात को यहाँ कैसे ?" भीष्म ने पूछा।

"पितामह, यहाँ न आऊँ तो जाऊँ कहाँ ? क्या करूँ ?" दुर्योधन ने कहा।

"क्या कोई खास बात होगई ?"

"पितामह, पितामह !" दुर्योधन आगे आकर भीष्म के पैरों के पास बैठा।

"राजन, राजन !" भीष्म ने दुर्योधन के सिर पर हाथ रक्खा।

"पितामह, मैं अब आपका 'बेटा दुर्योधन' बदलकर 'राजन' होगया न ! अब तो हद हो गई है।" दुर्योधन बोला।

"भाई, तुम क्यों आये हो, यह तो बताओ ?" भीष्म ने पूछा।

"आपसे यह कहाँ छिपा है ? पितामह, मुझे अगर पहले ही ऐसा मालूम होता तो मैं युद्ध करता ही नहीं। और पांडवों को हस्तिनापुर का राज्य सौंपकर जंगल में चला गया होता।" दुर्योधन बोला।

"लेकिन, तू मुझे बतला तो, कि क्या हुआ ?"

"बताऊँ क्या ? लेकिन पितामह, सच-सच कहदूँ। देखिए। बुरा न मानिएगा। आप पांडवों के साथ मन लगाकर युद्ध नहीं करते हैं।" दुर्योधन ने साफ़-साफ़ कह दिया।

"दुर्योधन, मैं क्या यह सच सुन रहा हूँ ?"

"जो कुछ भी आप सुन रहे हैं ठीक सुन रहे हैं !" आपके मन में पांडवों के साथ पक्षपात है इसलिए आप उनको मार नहीं रहे हैं।" दुर्योधन बोला।

"मैं पांडवों को मारता नहीं ? पांडवों को मारने के लिए कोई त्रिलोक में भी समर्थ है ? अर्जुन के रथ पर कौन बैठा है, इसका भी तुझे ख़याल है ?" भीष्म दुर्योधन को समझाने लगे।

"मुझे इसका तो बराबर ख़याल है। श्रीकृष्ण ने तो लड़ाई

में शस्त्र न लेने की प्रतिज्ञा मेरे सामने ली थी। उनकी प्रतिज्ञा आपने तुड़वाई, इसको मैं क्या नहीं जानता ?' दुर्योधन बोला।

"बेटा दुर्योधन, तुम भूल कर रहे हो।"

"भूल तो तभीसे होगई है जब मैंने यह युद्ध ठाना और अपना जीवन आपके हाथों में सौंप दिया।" दुर्योधन अपना पाँसे फेंकने लगा। "पांडवों का पक्ष लेकर आप इस तरह से हमारे योद्धाओं को शान्तिपूर्वक मरने देंगे, ऐसा मैंने कभी नहीं सोचा था।"

"तुझे ऐसा लगता है कि पांडवों के साथ के पक्षपात के कारण में ऐसा कर रहा हूँ ?" भीष्म ने कहा।

"पहले ऐसा न लगता। मेरे मित्र भी मुझे ऐसी बातें कहते तो भी मैं उनका कहना नहीं मानता। लेकिन आज तो मैं सब कुछ अपनी आँखों से देख रहा हूँ, इसलिए माने बग़ैर कोई छुटकारा भी तो नहीं है।" दुर्योधन बोला।

"दुर्योधन, दुर्योधन ! तुम्हारे ये वचन मेरे हृदय को बींध रहे हैं।" भीष्म ने अकुलाकर कहा।

"इसके लिए मुझे बहुत दुःख है। लेकिन जो बात साफ़ है वह आपके सामने रखना ज़रूरी है।" दुर्योधन बोला।

"लेकिन तेरी यह बात अगर झूठी पड़ गई तो ?" भीष्म ने कहा।"

"झूठी पड़ जाय ऐसा मैं मान ही नहीं सकता। लेकिन अब अगर ये बातें झूठीं पड़ जायँ तो मेरे जितनी खुशी और किसी को नहीं होगी।" दुर्योधन बोला।

"तेरी बातें झूठी हैं, और झूठी ही पड़ेंगी।"

"हैं तो सत्य ही। जब झूठी पड़ जायँगी तब मैं उनको झूठी मान लूँगा।"

"पाँडवों के साथ के अपने पक्षपात के कारण मैं मन लगाकर नहीं लड़ रहा हूँ, क्या यह आक्षेप सत्य है?" भीष्म को क्रोध आरहा था।

"सच्चा, सच्चा, और बिल्कुल सच्चा है। आपने अगर मन में निश्चय कर लिया होता तो लड़ाई पहले ही दिन खत्म होगई होती और आज मुझे सम्राट् हुए सात दिन होगये होते। लेकिन जब आप लोग ही मन से लड़ाई नहीं करते तो मैं क्या करूँ?" दुर्योधन बोला।

"दुर्योधन, तुम मुझपर सरासर अन्याय कर रहे हो!" भीष्म का हृदय अंतर्वेदना से भर रहा था।

"पितामह, अन्याय आपपर हो रहा है या मुझपर? युद्ध में हारेंगे तो भी आप पितामह तो मिटनेवाले हैं नहीं। आज आप दुर्योधन के पितामह हैं, तो कल जाकर भीम के पितामह हो जावेंगे। बस सिर्फ यही फर्क रहेगा। लेकिन मेरे लिए तो यह जिंदगी और मौत का सवाल है।" दुर्योधन बोला।

"दुर्योधन, ऐसा मत बोल। यह युद्ध भीष्म के लिए भी जीवन का सौदा ही है।" भीष्म उबल पड़े।

"जिन्दगी का सौदा होता तो रंग ही दूसरा होता।"

"दूसरा कैसा रंग?"

"हां, दूसरा रंग। जिन्दगी का सौदा होता तो ये पांडव कभी के धूल फांकते होते। आपने एक ही दिन जो हमला किया था तो श्रीकृष्ण तक को सोचना पड़ गया था। लेकिन आपको तो पांडवों को विजय दिलवानी है सो दिलवाइए।" दुर्योधन बोला।

"दुर्योधन, तुम्हारी आंखों में ऐनक ही ऐसे चढ़े हैं कि मैं जितना भी तुम्हारे लिए करता हूं वह सब तुम्हें कम ही लगता है।" भीष्म को ग्लानि हो रही थी।

"लगता ही है। बुरा तब न लगेगा जब कि अर्जुन इस युद्ध-भूमि में आपके हाथ मरेगा और पांडव निराश होकर वापस जावेंगे।" दुर्योधन बोला।

"दुर्योधन, तुम्हारी बुद्धि फिर गई है। अर्जुन को हराना तो खुद इन्द्र के लिए भी कठिन बात है। यह तुम जानते नहीं। उसका रथ जबतक श्रीकृष्ण हांक रहे हैं तबतक त्रिलोक में भी उसका बाल बांका करनेवाला कोई नहीं है।" भीष्म बोले।

"यह सब आप झूठ कह रहे हैं। हां, अर्जुन ने युद्ध के आरंभ में आपको तथा द्रोण को पैरों में तीर छोड़कर प्रणाम किया इस-लिए आपने उनको आशीर्वाद दिया है और इसलिए आप न मारें यह मैं समझ भी सकता हूं।" दुर्योधन बोला।

"क्षत्रिय को भला ऐसे आशीर्वाद होते हैं?"

"तब तो आप इस प्रपंच को छोड़ दीजिए और पांडवों को मारिए।"

"दुर्योधन, तेरे इन शब्दों के पीछे कोई दूसरा ही बोल रहा

है। या तो तेरे किसी सलाहकार ने तुझे बहकाया है, या तेरी मौत ही तुझसे यह बुलवा रही है।" भीष्म ने कहा।

"जो बोल रहा है वह तो खुद दुर्योधन ही बोल रहा है। दूसरे की सलाह तभी मैं स्वीकार करता हूँ जब कि मुझे वह पसंद आती है। इसलिए मैं जो कुछ बोलता हूँ और कहता हूँ उस सबकी ज़िम्मेदारी तो मुझपर ही है। मेरा कहना जब झूठा पड़ेगा तब मैं उसको भी कबूल कर लूँगा।"

"दुर्योधन, तेरे वचनों ने मुझे खूब घायल कर दिया है। जवानी में मैंने कितने ही ऐसे वचनों को सहन किया है और मुझे जो कुछ भी योग्य लगा है वही किया है। लेकिन आज अब ऐसे वचनों को सहन करने की शक्ति मुझमें कम होगई है, इसलिए मुझे बहुत दुःख होता है। मुझे ऐसा लगता है कि दुर्योधन का यह अविश्वास कैसे दूर करूँ?" भीष्म बोले।

"इसका तो एक ही उपाय है। पाण्डव सेना को आप लड़ाई में तहस-नहस करदें तो तुरन्त ही अविश्वास दूर हो जायगा। आपके हाथ में ही तो यह बात है।" दुर्योधन बोला।

"तब फिर तुम जाओ। कल पाण्डव सेना को मैं एकदम तहस-नहस कर डालूँगा।" भीष्म ने प्रतिज्ञा की।

"पितामह, जिस चीज़ को आप कर नहीं सकते उसकी प्रतिज्ञा क्यों कर रहे हैं?"

"नहीं हो सकता? कल तो होगा और अवश्य होगा।"

"इस समय तो आप कह रहे हैं, लेकिन कल जब सुबह अर्जुन

और युधिष्ठिर को लड़ाई में सामने देखेंगे तब स्नेह और दया का स्रोत उमड़ पड़ेगा और आपके हाथ ढीले पड़ जावेंगे।" दुर्योधन ने कहा।

"दुर्योधन, मैं तुम्हें कहता हूँ कि कल मेरा हाथ ढीला नहीं होगा। मुझे आज कुछ भी नहीं सूझ दे रहा है। शायद मेरी मृत्यु ही नज़दीक आ रही हो। लेकिन कल तो मैं ऐसा ही युद्ध करूँगा कि जिससे तुम्हारा अविश्वास दूर हो जायगा।"

"अच्छा, देखेंगे!"

"देखना था सो देख लिया। कल का भीष्म दूसरे ही प्रकार का होगा।" भीष्म बोले।

"तब फिर कल रात को दुर्योधन को भी आप दूसरी ही बातें करते हुए पावेंगे। पितामह, अब मैं आज्ञा चाहता हूँ।"

"जाओ। अच्छी तरह से जाओ। तुम्हारे तीक्ष्ण वचनों से मैं आज घायल होगया हूँ। कल तो जैसा मैंने तुमको कहा है उसके अनुसार मैं पाण्डवों के छक्के छुड़ा ही दूँगा। लेकिन दुर्योधन, आज तुम्हारे वचनों को सुनकर मेरे अंग ढीले पड़ गये हैं और मेरे युद्ध का सारा रस सूख गया है।" भीष्म ने कहा।

"पितामह, युद्ध का रस तो पहले मेरा सूखेगा उसके बाद आपका। आपने तो कुरुराज्य को जीवन दिया है। उसपर तो मेरे जैसे कितने ही आते हैं और कितने ही चले जाते हैं। लेकिन आप उसमें से हट थोड़े ही सकते हैं?"

"आजतक ऐसा था। अब ऐसा नहीं है। मुझे अपना

अन्तकाल नज़दीक दिखाई दे रहा है। तुम्हारे इन वचनों ने मुझे घायल कर दिया है और अव मैं इस दशा में क्यों पड़ा हूँ यही समझ में नहीं आरहा है।" भीष्म बोले।

"पितामह, आप तो सारे कुरुवंश की संस्कृति के रक्षक हैं। आपके कारण ही यह सारा वंश टिका हुआ है।"

"आजतक मैं भी ऐसा ही मानता था। इसीलिए तो तुम्हारे जैसे छोटे-छोटे वच्चे वड़े भी हो गये तो भी मैं अपनी जगह से खिसक नहीं गया। लेकिन आज तो अव मेरा यह मोह हट रहा है। ऐसा ही मुझे लगता है, और मैं इस अठारह अक्षौहिणी सेना का नाश अपने सामने देख रहा हूँ।" भीष्म बोले।

"आप अगर कल वरावर युद्ध करेंगे तो मैं दूसरे ही दिन आपकी विजय देखूँगा।"

"कल तो मैं ज़रूर शत्रुओं की सेना को नष्ट करूँगा। मैंने जो कहा है उसे मैं मिथ्या नहीं करूँगा। लेकिन कल के दिन के वाद परसों का दिन भी उग रहा है। वह परसों का दिन कैसा अस्त होगा; यह तुम जानते हो? दुर्योधन तुमने वहुत वुरा किया!" भीष्म बोले।

"पितामह, परसों के दिन की वात परसों के दिन। कल की वात ही याद रखिए न!" दुर्योधन ने तो अपनी धृष्टता पर कमर कसली थी।

"दुष्ट, तुझे अभी भी ऐसा लगता है कि मैं वदल जाऊँगा? पापी दुर्योधन! स्वार्थी दुर्योधन! जा, चला जा। मैं तुम्हारे पक्ष में

रहा, यही मैंने भूल की। इसीसे ये सब बातें आज मैं सुन रहा हूँ। जाओ, मैं तुम्हारे साथ अब ज़्यादा बातें नहीं करना चाहता। कल भीष्म का पराक्रम देख लेना और परसों..........क्यों बोलूँ? ज़बान पर शब्द ही नहीं आता।" भीष्म के होंठ क्रोध से कांप रहे थे।

लेकिन दुर्योधन तो इसके पहले ही चला गया था।

: ६ :

गदा-युद्ध

"क्या यही तालाब है ?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"हाँ, यही। इसीको लोग द्वैतवन का तालाब कहते हैं।" सहदेव बोला।

"इन लोगों को कैसे मालूम हुआ कि दुर्योधन इसमें है ?" युधिष्ठिर बोले

"ये शिकारी लोग कहते थे कि हम तालाब के किनारे कपड़े धो रहे थे तब उस किनारे पर खड़े हुए तीन आदमी पानी के अन्दर किसीसे बातें कर रहे थे। उसपर से हमें मालूम हुआ कि दुर्योधन तालाब में घुसा हुआ है।" भीम ने कहा।

"यह ठीक है। किनारे पर खड़े हुए तीन आदमियों में से एक तो अश्वत्थामा ही होगा।" अर्जुन ने कहा।

"एक अश्वत्थामा, दूसरा कृपाचार्य, तीसरा कृतवर्मा। ये ही तीन आदमी अभीतक ज़िन्दा है और चौथा दुर्योधन।" युधिष्ठिर ने कहा।

"तो चलो, अब हम किसी तरह दुर्योधन को बाहर निकालें।" भीम बोला।

"दुर्योधन, पापी दुर्योधन, तालाब में क्यों घुसकर बैठा है ?"

युधिष्ठिर ने पुकारा। "इतनी बड़ी सेना का संहार करके इस जरा-से तालाब में छिपकर बैठना तुझे शोभा नहीं देता। बाहर आओ, कौरवनाथ, और हमें हराकर राज्य करो। कुल-वंश में कोई इस तरह से छिपकर बैठा हो ऐसा हमने नहीं सुना।"

"युधिष्ठिर!" पानी के अन्दर से धीर और गंभीर आवाज़ आई; "युधिष्ठिर! तुम अपनी सहज धीरज को क्यों खो रहे हो? हरेक आदमी को एक-न-एक दिन अनावश्यकरूप से बकने का दिन आता ही है। एक दिन मैं चिल्लाया करता था, उसी तरह आज तुम्हारा बकने का दिन आया है। तो तुम जितना चाहो बकवास करलो।"

"ऐ अन्धे के लड़के! कौन बक-बक कर रहा है? तू या युधिष्ठिर?" भीम जोर से चिल्लाया, "बकवास छोड़कर लड़ाई में आजा।"

"भीमसेन, मैं राजपुत्र हूँ। जंगल के जानवरों के साथ बातें करने में मुझे ज़रा संकोच होता है।" दुर्योधन ने ताना मारा।

"जंगली जानवर तो वह अन्धा कौरवराज है। अगर सच्चे बाप का बेटा हो तो बाहर आजा।" भीम ने कहा।

"दुर्योधन, भीम ठीक कह रहा है। यह सारा युद्ध तेरा खड़ा किया हुआ है। कर्ण, शकुनि और दुःशासन सब पृथ्वी पर सो गये हैं; इसलिए तुमको छिपकर नहीं रहना चाहिए। तुम बाहर आओ और युद्ध में हमें हराकर सारी पृथ्वी पर आनन्द के साथ राज्य करो।" युधिष्ठिर ने कहा।

"युधिष्ठिर, पाण्डवों में तुम ही एक अकेले धर्म जाननेवाले हो, यह मैं जानता हूं।"

"आज युधिष्ठिर धर्मात्मा हो गये क्यों ? और जुआ खेलते समय युधिष्ठिर धार्मिक नहीं थे ?" भीम बोला।

"तुम उसको बोलने तो दो।" युधिष्ठिर ने भीमसेन को रोका "दुर्योधन अब बोल; मैं सुन रहा हूं।"

"युधिष्ठिर, मैं अब बहुत थक गया हूं; हताश होगया हूं। मेरा रथ और घोड़े सब नष्ट होगये हैं। मैं शस्त्र-रहित हूं। जिरह और बख्तर कुछ भी नहीं रहा। इस तरह से निःशस्त्र होकर मैं तुम्हारे साथ कैसे लड़ सकता हूं। इसीलिए मैं यहां आकर छिपा हूं और अपना मौका देख रहा हूं।" दुर्योधन बोला।

"दुर्योधन, तेरी बातें बिलकुल ठीक हैं। लेकिन तू बाहर आजा। हम तुमको रथ और कवच देंगे, बख्तर देंगे, शस्त्र भी देंगे और तब तुम्हारे साथ युद्ध करेंगे। हम सब लोग युद्ध-शास्त्र के नियमों से परिचित हैं। हम लोग तुम्हें अधर्म से नहीं मारेंगे।" युधिष्ठिर बोले।

"तब तो फिर मैं यह बाहर आया।"

ऐसा कहकर दुर्योधन—पहाड़ जैसा दुर्योधन पानी के अन्दर से बाहर आया और हाथ में गदा लेकर उनके सामने खड़ा हो गया।

"ले यह कवच।" युधिष्ठिर बोले और उसको एक कवच दिया।

"युधिष्ठिर, आप लोग तो बहुत हैं और मैं अकेला हूं। मेरे साथी तो सब मर गये हैं। आप सब लोगों से मैं अकेला कैसे लड़ सकता हूं ?" दुर्योधन बोला।

"दुर्योधन, तुम्हारी बात बिलकुल ठीक है। अगर तुम युद्ध ही करना चाहते हो तो हम पाँचों पाण्डव सब एक-एक करके तुम्हारे साथ लड़ेंगे और हममें से किसी एक की हार सबकी हार समझी जायगी।" युधिष्ठिर ने कहा।

"यही सच्चा धर्म-युद्ध है। मुझे यह बात मंजूर है।" दुर्योधन बोला।

"तुम्हें क्यों न मंजूर होगा?" श्रीकृष्ण से न रहा गया। तुमने ऐसे ही तो धर्म-युद्ध किये हैं इसलिए यह क्यों न मंजूर होगा? अकेले अभिमन्यु को छः-छः महारथियों ने मिलकर मारा था उस समय यह धर्म-युद्ध कहाँ गया था? युधिष्ठिर तो भोले हैं, इसीलिए तुमको उन्होंने हाँ करदी। लेकिन इसके परिणाम पर विचार करनेवाले दूसरे भी हैं।"

"मेरी समझ से तो पाण्डवों के अग्रणी युधिष्ठिर ही हैं। मैं आप लोगों से गदा-युद्ध करना चाहता हूँ, इसलिए आपमें से जो कोई गदा-युद्ध करने की इच्छा रखता हो वह मेरे सामने आ जाय।" दुर्योधन बोला।

"तुम्हारे साथ दूसरा और कौन गदा-युद्ध कर सकता है?" भीम ने आगे आकर कहा, हम दोनों जन्म के मित्र रहे हैं; हम रात को सोने के पहले एक-दूसरे को रोज याद कर लिया करते हैं। उसमें भी द्रौपदी ने हमारी मित्रता को ज़्यादा बढ़ा दिया है। इसका तो फिर पूछना ही क्या? एक ही बलराम के हम दोनों शिष्य भी

हैं। दुर्योधन! आओ, तुम्हारे साथ मैं गदा-युद्ध करने को तैयार हूँ।" भीम ने ललकारा।

× × × ×

"भीम और दुर्योधन का गदा युद्ध शुरू हुआ। भीम की ताक़त और दुर्योधन की चपलता; दोनों एक-से-एक बढ़कर थे। फिर भी दुर्योधन बढ़कर था। सब पाण्डव इस गदा-युद्ध के प्रेक्षक थे। गुरु बलराम भी योगायोग से वहाँ आगये थे, इसलिए वह भी अपने दोनों शिष्यों के गदा-युद्ध को देखने के लिए रुक गये। कभी भीम गिरता तो कभी दुर्योधन। कोई एक-दूसरे से हारे ऐसा न था। इसलिए श्रीकृष्ण को चिन्ता हुई।

"अर्जुन!" एक कोने में अर्जुन को लेजाकर श्रीकृष्ण ने कहा।" इस युद्ध में भीम दुर्योधन से जीते यह मुश्किल मालूम पड़ता है। किसी भी एक की हार सबकी ही हार होगी ऐसा कहकर युधिष्ठिर ने भारी भूल की है।"

"हाँ, यह तो मैं भी समझता हूँ। देखिए न, दुर्योधन भीम के दाव को तो बचा लेता है और भीम के दांव में आता ही नहीं।" अर्जुन बोला।

"अर्जुन, मुझे तो एक बात सूझती है!"

"कौनसी?"

"भीम अगर दुर्योधन की जाँघ में गदा मारे तो दुर्योधन गिर जायगा।" श्रीकृष्ण ने कहा

"यह तो भीम जानता है।"

"जानता तो है, लेकिन इस समय भूल गया मालूम होता है।"

"तो उसको याद दिलाऊँ? लेकिन यह अधर्म युद्ध नहीं होगा?" अर्जुन ने शंका की।

"यह कैसा युद्ध माना जायगा, यह बाद में देख लेंगे। एकबार दुर्योधन को गिरने दो। अर्जुन, तू ताल ठोंक तो शायद भीम को याद आजायगी।"

अर्जुन ने अपनी दाईं जांघ पर ताल ठोंकी कि भीम समझ गया और दुर्योधन के जाँघ पर इतनी ज़ोर से गदा मारी कि दुर्योधन एक ही क्षण में धरती पर गिर पड़ा और उसका पैर एकदम टूट गया।

इस ओर पाण्डव आनंद में आगये और उन्होंने बड़े ज़ोरों से हर्षनाद किया।

लेकिन बलराम से यह सहन नहीं होसका।

"अरे ओ कृष्ण, इस भीम ने दुर्योधन की जाँघ में गदा मारी, यह अधर्म किया है। मैं तो गदायुद्ध का आचार्य हूँ। मेरे देखते-देखते ऐसा अधर्म हो, यह मुझसे कैसे देखा जायगा?" इतना कहकर बलराम ने अपना हल भीम को मारने के लिए उठाया।

लेकिन श्रीकृष्ण तुरन्त ही बीच में पड़ गये, "भाईसाहब, भीम ने अधर्म किया है, इसमें कोई शंका नहीं; लेकिन दुर्योधन के अधर्म की तो सीमा ही न थी। और दूसरे, भीम ने दुर्योधन की जाँघ को तोड़ने की प्रतिज्ञा की थी, इसपर भी तो आपको ध्यान देना चाहिए। भीम का अधर्म तो है ही, लेकिन क्षमा के योग्य है।"

श्रीकृष्ण का कहना बलराम को अच्छा नहीं लगा, इसलिए गुस्से में आकर वह वहाँसे चलते बने।

पाण्डव भी दुर्योधन को तालाब के किनारे तड़पते हुए छोड़कर रवाना हुए।

बेचारा कौरवराज कौवों और चीलों को उड़ाते हुए वहाँ अपनी अन्तिम साँसें लेता पड़ा रहा।

इतने में दूर से अश्वत्थामा के रथ की आवाज़ सुनाई देने लगी।

: ७ :

जीवन की अन्तिम घड़ी

"कौन है, अश्वत्थामा ?"

"जी महाराज !"

"तुम आगये ? कुछ हुआ क्या ?"

"कुछ क्यों, सब कुछ होगया। और सब कुछ से भी कुछ ज़्यादा ही हुआ।" अश्वत्थामा सन्तोष से बोला।

"पांचालों को मारा ?"

"सब पांचालों को। धृष्टद्युम्न को तो पलंग पर सोते में ही ख़त्म कर दिया। पांचालों को तो चुन-चुनकर मारा और साथ ही............।"

"और साथ ही क्या ?"

"और साथ ही पांचाली के पांचों पुत्रों को भी ख़त्म कर दिया !" अश्वत्थामा ने बात पूरी की।

दुर्योधन ने मुँह मोड़कर कहा, "अरेरे ! गुरुपुत्र, तुमने बहुत बुरा किया।"

"मुझे तो द्रुपद का नाम पृथ्वी पर से मिटा देना था।" अश्वत्थामा बोला।

"उन बेचारों ने हम लोगों का क्या बिगाड़ा था ?"

"जितना अभिमन्यु और घटोत्कच ने बिगाड़ा था उससे कुछ कम नहीं।" अश्वत्थामा बोला।

"वे अगर जिन्दा रहते तो किसी दिन हमें पिण्ड देते।" दुर्योधन लाचारी से बोला।

"आपको पिंड देते यह बात तो ठीक, लेकिन द्रुपद को भी तो देते न?" अश्वत्थामा चिढ़ गया।

"ठीक; तो जो कुछ हुआ वह अच्छा ही हुआ। आज सब लोग मृत्यु के मार्ग पर चल निकले हैं, इसमें कौन पीछे रहेगा यह कहा नहीं जा सकता।" दुर्योधन बोला, "अश्वत्थामा! मेरी पीड़ा बढ़ती जा रही है। अब मैं चला ही समझो। सुबह होने को है। अगर पाण्डवों को मालूम होजाय तो तुम्हारा पीछा किये बगैर वे नहीं रहेंगे।"

"महाराज, मेरी चिन्ता न कीजिए। आपका अन्त समय निश्चिन्त और सुख-रूप हो, यही मेरी तीव्र इच्छा है।"

"मेरा अवसान? आजतक कितने ही अवसानों को मैंने अनुभव कर लिया और उन सब अवसानों का निष्कर्ष आज यह अन्तिम अवसान है! अश्वत्थामा, पांचाल मारे गये इसलिए हृदय की आग कुछ तो शान्त हुई है। अब मुझे जरा बिठला दो तो मैं इस कुरुक्षेत्र के मैदान में जो अठारह अक्षौहिणी सेना सोई हुई है उसपर एक अन्तिम नज़र डाल लूँ।" दुर्योधन बोला।

"महाराज, यह कुरुक्षेत्र नहीं, यह तो समन्त पंचक है। कहें तो आपको उठाकर कुरुक्षेत्र में ले चलूँ।" अश्वत्थामा ने कहा।

"इतना समय दुर्योधन के खाते में जमा होगा ऐसा दिखाई नहीं देता। कर्ण और शकुनि मुझे बुला रहे हैं।" दुर्योधन ने ऊपर आकाश की ओर देखकर कहा।

"महाराज, मुझे और कुछ कहना है ?"

"कहने को तो बहुत है अश्वत्थामा ! कह सकूँ तो इस हृदय का भार कुछ हलका होजाय। लेकिन कह नहीं सकता।"

"जितना कह सकते हों, उतना ही कहिए महाराज !"

"अश्वत्थामा, हृदय के होंठ बन्द होते जा रहे हैं। कैसे कहूँ ? गुरुपुत्र, यह सियार मेरा हाथ चाट रहा है, इसे ज़रा दूर तो भगा दो।" दुर्योधन ने कहा।

"लीजिए महाराज !"

"अश्वत्थामा, यह सियार ही तुझे कहेगा कि आज कुरुराज का हाथ चाटने की हिम्मत इसको कहाँसे आगई ? यह मेरा हाथ ! इसी हाथ से भीम को मैंने लड्डू खिलाये थे; इसी हाथ से भानुमती का पाणिग्रहण किया था; इसी हाथ से भरी सभा में जाँघ ठोककर द्रौपदी को बुलाया था; इसी हाथ से गांधारी का चरण स्पर्श किया था; भानुमति से अन्तिम विदा लेते समय इसी हाथ से उसकी आँखों से आँसू पोंछे थे; और आज इसी हाथ को सियार चाटते हैं ! यही मेरी जीवन-कथा का सार, और यही मनुष्य-मात्र की जीवन-कथा का सार है।" दुर्योधन ने जैसे-तैसे कह डाला।

"आप इस समय खेद न करें। मन को प्रसन्न रखिए।" अश्वत्थामा आश्वासन देने लगा।

"अश्वत्थामा, मैं खेद नहीं करता..........."

"माता गांधारी को कुछ कहलाना है ?"

"गांधारी को ? हाँ ।"

"क्या कहना है ?"

"गांधारी से कहना कि पाण्डवों के पक्ष में ही धर्म था इसी-से भीम ने मेरी जाँघ में गदा मारी ।"

"यह तो वह जान ही लेंगी ।"

"भले ही जानलें, लेकिन मेरी ओर से भी तो जानलें !"

"आपका अंतिम नमस्कार कहूँ ?"

"गांधारी को नहीं । अन्तिम प्रणाम तो धृतराष्ट्र को । इस समाचार से उनका हृदय फट जायगा । और ऐसे हृदय फटे बिना मनुष्य का और चारा ही क्या है ?" दुर्योधन बोला ।

"महाराज को आपका अंतिम प्रणाम कहूँगा और आपकी अंतिम कथा भी कहूँगा ।"

"यह कथा मत कहना । और अगर तुम सब कथा कहो भी तो, भीम ने मुझे अधर्म से मारा है, यह मत कहना । अगर यह भी कहदो, तो यह मत कहना कि भीम ने मेरे गिर जाने पर मेरे सिर में लात मारी थी । यह तो बिलकुल ही मत कहना । तुम्हें मेरी कसम है ।"

"क्यों नहीं कहूँ ? सच्ची बातें क्यों न कहूँ ?"

"तू धृतराष्ट्र से कहेगा तो माता गांधारी भी जान जायँगी ।"

"भले ही जान जायँ ।"

"और गांधारी जान जायँगी तो क्या होगा, तुझे खबर है ? गांधारी ने तो अपने लाडले पुत्र दुर्योधन का भी धर्मबुद्धि से त्याग ही चाहा है। उस गांधारी के कान पर अगर यह बात आगई कि भीम ने और श्रीकृष्ण ने मुझे मारने में अधर्म किया है तब तो फिर उनको श्राप ही दे बैठेगी !" दुर्योधन बोला।

"भले ही देदे। गांधारी के श्राप से भले ही वे दोनों मर जायँ न ?"

"भीम को और उसी तरह श्रीकृष्ण को ऐसी सरल मौत प्राप्त हो, ऐसी मेरी इच्छा नहीं। अश्वत्थामा, एक बात फिर मेरे मन में उठती है इसलिए वह मैं कहदेता हूँ। इन पांडवों ने धर्म का ढोल पीट-पीटकर सारे जगत् को धोखा दिया है और मुझे अधर्मी कहकर बदनाम किया है।" दुर्योधन बोला।

"हाँ, गुरु भी ऐसा ही कहा करते थे, भीष्म भी ऐसा ही कहते थे, और विदुर तो दूसरी बात ही नहीं करते थे।"

"इन पांडवों के धर्म की पोल आज मुझे स्पष्ट मालूम होती है।"

"आजतक नहीं दिखाई दिया था क्या ?"

"शुरू से ही दिखाई देता है, लेकिन हृदय में समझी हुई बात को मैं शब्दों में उतार नहीं सकता था। मेरा आचरण तो शुरू से ही अधर्ममय था, इसमें मुझे कभी भी शंका न थी; और मैंने किसी भी दिन धर्मात्मा होने का दावा भी नहीं किया।"

"आप अधर्मी ?" अश्वत्थामा बोला।

"अश्वत्थामा, यह विवेक का समय नहीं है। यह तो अब

हृदय को शांत करने का समय है। मैं खुद ही कहता हूँ कि मैं अधर्मी हूँ। यह मत मानना कि मैं धर्म-अधर्म को बुद्धि से परख नहीं सकता। धर्म-अधर्म का विवेक मैं बराबर रख सकता हूँ; लेकिन जब आचरण का मौक़ा आता है तब न जाने क्यों मैं अधर्म-बुद्धि के अनुसार ही चलता था और अभी भी चलता रहूँगा।" दुर्योधन बोला।

"देखिए आपकी सांस बढ़ती जाती है।"

"जीवन की ये अन्तिम बातें हैं अश्वत्थामा, इसलिए कर लेने दे। मैं तो अधर्म से जीया हूँ। भीम को ज़हर खिलाया वहाँ भी अधर्म था; पांडवों को लाख के महल में जलवाया वहाँ भी अधर्म था; जूए में जीता वहाँ भी अधर्म; और अन्त में तूने इन पांचालों का अन्त किया यहाँ भी अधर्म ही था। पाण्डवों को नष्ट करने में मैंने धर्म-अधर्म का विचार ही नहीं किया।"

"महाराज, धीरे से बोलिए। आपकी साँस बढ़ती जाती है।"

"लेकिन अश्वत्थामा, पाण्डव तो धर्म, धर्म और धर्म की ही बातें करते हैं! युधिष्ठिर तो कहलाते हैं धर्म की मूर्ति! भीम के लिए कहते हैं कि वह तो युधिष्ठिर की आज्ञा के अनुसार ही चलता है। और श्रीकृष्ण तो धर्म का उत्पत्ति-स्थान ही माने जाते हैं। इन सारी धर्म की पूछड़ियों ने युद्ध में धर्म का किस प्रकार पालन किया यह तुम जानते ही हो। भीष्म को शिखंडी से मरवाया। यह धर्म था न? गुरु द्रोण जब पूछते हैं तब धर्ममूर्ति युधिष्ठिर खुद झूठ बोले, वह धर्म ही था न? जयद्रथ को जिस

प्रकार मारा वह धर्म था ? मेरे प्रिय कर्ण के रथ का पहिया पृथ्वी निगल रही थी उस समय उसके ऊपर प्रहार किया, वह धर्म था ? भीम ने मेरी जांघ में गदा मारी, वह भी धर्म था न ? " दुर्योधन की साँस ज्यादा बढ़ने लगी।

"अब आप बोलना बन्द करदें। धर्म-अधर्म का जो कुछ भी होना होगा होजायगा।"

"नहीं, मुझे अब देरी नहीं है। मेरे जीवन में तो अधर्म था ही, और वह भी सरेआम था। लेकिन इन पांडवों का तो धर्म का ढोंग था, यह आज मुझे स्पष्ट समझ में आरहा है।" दुर्योधन बोला।

"और उस श्रीकृष्ण का ?"

"श्रीकृष्ण को मैं बराबर पहचान नहीं सका। या तो वह बड़ा भारी पाखंडी और धूर्त है और या वह धर्म और अधर्म इन दोनों से परे ऐसा कोई महान् योगी है। लेकिन पांडव तो पाखंडी हैं, यह तू खुद पांडवों की सभा में ही प्रकट करना।"

"महाराज, आप जरा शांत होजाइए।"

"मैं शान्त हूँ। दूसरों को धोखा दिये बगैर जैसा मैं था वैसा ही दिखाने का जीवनभर मैंने प्रयत्न किया है, और इसीसे मुझे शांति है। पांडवों ने धर्म का ढोंग करके लोगों में प्रतिष्ठा प्राप्त की और आज कौरवों का साम्राज्य प्राप्त करेंगे। लेकिन गुरु-पुत्र, मनुष्य-मात्र के हृदय में परमेश्वर ने धर्म और अधर्म को मापने का जो विचित्र यंत्र रक्खा है उस यंत्र की बताई हुई बात

कभी झूठी नहीं होती। संसार में अगर ईश्वर जैसी कोई वस्तु होगी, तो याद रखना अश्वत्थामा, मैं तो आज क्षत्रियों के बिस्तर पर सोकर स्वर्ग में जाता हूँ, लेकिन यह सनातन ब्रह्मचारिणी पृथ्वी के पति पांडव भी अंत में मेरी ही दशा को प्राप्त होंगे।" दुर्योधन ने अपने अंतिम विचार कहे।

"महाराज, अब तो हद होरही है। आप बोलना बन्द करें।"

"तुम सब लोग कहते हो कि यह अठारह अक्षौहिणी सेना पृथ्वी पर सोई हुई है वह मेरे कारण हुई है। यह तुम सब लोगों की भूल है। ये सब लोकमानस की कल्पना मात्र है। कौरव-कुल तो विनाश के लिए पककर तैयार ही था, मैंने आकर उसको स्पर्श कर दिया और वह ढह पड़ा। ये सारे क्षत्रिय मृत्यु के जबड़े में ही थे, मैंने उनको अनुकूल भूमि तैयार करदी बस इतना ही।" दुर्योधन बोला।

"महाराज, अब अधिक बोलेंगे तो मैं चला जाऊँगा।"

"अच्छा, अब मैं नहीं बोलूँगा। मेरे और पाँडवों के जीवन का यह सार तुम श्रीकृष्ण के पास रखना, यही मेरे जीवन की अंतिम इच्छा है!" दुर्योधन जरा शांत हुआ।

"श्रीकृष्ण से जब शांति में मिलूँगा तब यह जरूर कहूँगा और कुछ?"

"कहने को तो बहुत-सी बातें हैं। लेकिन हृदय के ताले जब हम चाहें तभी थोड़े ही उघड़ सकते हैं।" दुर्योधन बोला।

"आपका सिर नीचा है, जरा उसको ऊँचा करदूँ?"

"इस समय तो ऊँचा-नीचा सब समान है।"

"महाराज ! महाराज !"

दुर्योधन ने आँखें खोलीं।

"महाराज ?"

दुर्योधन ने आँखें मींचलीं।

धृतराष्ट्र का पुत्र, कौरव-कुल का सिरताज, पांडवों का कट्टर शत्रु, ग्यारह अक्षौहिणी सेना का मालिक, बलराम का प्रिय शिष्य, देवी भानुमति के हृदय का हार, धर्म-अधर्म की तराजुयें परमेश्वर ने जगत् के किस कोने में जमा रक्खी हैं इसकी खोज करने के लिए ईश्वर के धाम में पहुँचा और वहाँ पाण्डवों की राह देखने लगा।

अश्वत्थामा ने दुर्योधन के शव पर शोक के आँसुओं की दो-चार बूँदें डालीं न डालीं कि इतने में रथ के पहिये की आवाज सुनाई दी। इस कारण उस शव को वैसे-का-वैसे ही छोड़कर वह वहांसे अपनी जान लेकर भागा।

लोक साहित्य माला

'सस्ता साहित्य मण्डल' की स्थापना इस उद्देश्य को लेकर हुई थी कि जन साधारण को ऊँचा उठानेवाला साहित्य सस्ते-से-सस्ते मूल्य में सुलभ कर दिया जाय। हम नहीं कह सकते कि 'मण्डल' इस उद्देश्य में कहाँ तक सफल हुआ है; लेकिन इतना निश्चित है कि उसने अपने उद्देश्य की पूर्ति की ओर नेक नीयती से बढ़ते रहने की कोशिश की है और हिन्दी में राष्ट्रनिर्माणकारी और जन-साधारण के लिए उपयोगी साहित्य देने में उसने अपना ख़ास स्थान बना लिया है। लेकिन हमको अपने इतने से कार्य से संतोष नहीं है। अभी तक 'मण्डल' से, कुछ अपवादों छोड़कर, ऐसा साहित्य नहीं निकला जो बिलकुल 'जन-साधारण का साहित्य'—लोक साहित्य कहा जासके। अभी तक आमतौर पर मध्यम श्रेणी के लोगों को सामने रखकर 'मण्डल' का प्रकाशन कार्य होता रहा है लेकिन अब ऐसा समय आगया है कि हमें अपनी गति और दिशा बदलनी चाहिए और जनता का और जनता के लिए साहित्य प्रकाशित करने का खास तौर से आयोजन करना चाहिए।

उपरोक्त इसी विचार को सामने रखकर 'मण्डल' से हम 'लोक साहित्य माला' नाम की एक पुस्तक माला प्रकाशित करने की तजवीज कर रहे हैं। इस माला में डबल क्राउन सोलह पेजी आकार की दो-ढाई सौ पृष्ठों की लगभग दो सौ पुस्तकें देने का हमारा विचार है। पुस्तकें साधारणतः जन-साधारण की समझ में आने लायक सरल भाषा में, अपने विषयों के सुयोग्य विद्वानों और नामी-नामी लेखकों-द्वारा लिखाई जायेंगी। पुस्तकों के विषयों में जनसाधारण से सम्बन्ध रखनेवाले तमाम विषयों—

जैसे ग्राम उद्योग, ग्राम-संगठन, पशुपालन, सफाई, सामाजिक बुराइयाँ, विज्ञान, साहित्य, अर्थशास्त्र, राजनैतिक, सामान्य जानकारी देशभक्ती की कहानियाँ, महाभारत-रामायण की कहानियाँ, चरित्रबल बढ़ानेवाली कहानियाँ खेती, बाग़वानी, आदि का समावेश होगा। संक्षेप में हमारा इरादा यह है कि हम लगभग दो सौ पुस्तकों की एक ऐसी छोटी-सी ऐसी लाइब्रेरी बना दें, जो साधारण पढ़े-लिखे लोगों के अन्दर आजकल के सारे विषयों को तथा उनको ऊँचा उठानेवाले युग परिवर्तनकारी विचारों को सरल-से-सरल भाषा में रख दें और उसके बाद उन्हें फिर किसी विषय की खोज में—उसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए—कहीं बाहर न जाना पड़े।

ऊपर लिखे अनुसार लगभग दो-ढ़ाई सौ पृष्ठों की पुस्तक माला की पुस्तकों का दाम हम सस्ते-से—सस्ता रखना चाहते हैं। आम तौर पर हिन्दी में उतनें पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य १) या १।) रु० रखा जाता है लेकिन हम इस माला की पुस्तकों का दाम आठ आना रखना चाहते हैं। काग़ज छपाई आदि बहुत बढ़िया होगी।

पहले पहल हम निम्नलिखित पाँच पुस्तकें इस माला में निकालने का आयोजन कर रहे हैं:—

१. हमारे गाँवों की कहानी [स्वर्गीय रामदास गौड़]
२. महाभारत के पात्र—१ [आचार्य नृसिंहप्रसाद कालिप्रसाद भट]
३. लोक-जीवन [आचार्य काका कालेलकर]
४. संतवाणी [वियोगी हरि]
५. हमारी नागरिक जिम्मेदारी [कृष्णचन्द्र विद्यालंकार]

सस्ता साहित्य मंडल की 'सर्वोदय साहित्य माला' के प्रकाशन

१—दिव्य-जीवन ।≡)
२—जीवन-साहित्य १)
३—तामिलवेद ॥)
४—शैतान की लकड़ी अर्थात् भारत में व्यसन और व्यभिचार ॥।≡)
५—सामाजिक कुरीतियां (ज़ब्त : अप्राप्य) ॥)
६—भारत के स्त्री-रत्न (तीन भाग) ३)
७—अनोखा (विक्टर ह्यूगो) १।≡)
८—ब्रह्मचर्य-विज्ञान ॥।≡)
९—यूरोप का इतिहास २)
१०—समाज-विज्ञान १॥)
११—खद्दर का सम्पत्ति-शास्त्र ॥।≡)
१२—गोरों का प्रभुत्व ॥।≡)
१३—चीन की आवाज़ (अप्राप्य) ।-)
१४—दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह १।)
१५—विजयी बारडोली २)
१६—अनीति की राह पर ॥=)
१७—सीता की अग्नि-परीक्षा ।-)
१८—कन्या-शिक्षा ।)
१९—कर्मयोग ।=)
२०—कलवार की करतूत =)
२१—व्यावहारिक सभ्यता ॥)
२२—अंधेरे में उजाला ॥)
२३—स्वामीजी का बलिदान (अप्राप्य) ।-)
२४—हमारे ज़माने की गुलामी (ज़ब्त : अप्राप्य) ।)
२५—स्त्री और पुरुष ॥)
२६—घरों की सफ़ाई ।=)
२७—क्या करें ? (दो भाग) १॥=)
२८—हाथ की कताई-बुनाई (अप्राप्य) ॥=)
२९—आत्मोपदेश ।)
३०—यथार्थ आदर्श जीवन (अप्राप्य) ॥-)
३१—जब अंग्रेज़ नहीं आये थे- ।)
३२—गंगा गोविन्दसिंह (अप्राप्य) ॥=)
३३—श्रीरामचरित्र १।)

७५—हमारे किसानों का सवाल ।)
७६—नया शासन विधान
(प्रांतीय स्वराज्य) ॥)
७७ (१) गाँवों की कहानी ॥)

आगे प्रकाशित होने वाले ग्रन्थ

गीता-मन्थन १॥)
गांधीवाद : समाजवाद १)
नया शासन विधान (फेडरेशन) ॥)
विनाश या इलाज ? ॥)
राजनीति की भूमिका ॥)
महाभारत के पात्र-१ ॥)
संतवाणी ॥)
जबसे अंग्रेज आये ॥)

सस्ता साहित्य मण्डल, नया बाज़ार, दिल्ली